

ભીંડી-સંગ્રહો

મુનિ સુનીલસાગર

मुणि-सुणीलसायरप्पणीदो-

णीदी-संगहो

प्रस्तुत कृति में मानव समाज के दैनिक उपयोग में आने योग्य कल्याणकारी नीतियों का संग्रह किया गया है। इन नीतियों के अनुसार चलने वाला गृहस्थ निश्चित ही विवेक सम्पन्न, शान्त-स्वभावी हो जाता है। चूंकि सभी नीतियाँ सत्पथ प्रदर्शक हैं तथापि उन्हें धर्मनीतियाँ तथा लोक-नीतियाँ; इन दो भागों में विभाजित किया गया है। कृति के अन्तिम पृष्ठों में परमेष्ठि-त्थुदि, जिणिंद-त्थुदि, चउवीस-तित्थयर-त्थुदि, भारदी-त्थुदि, तित्थयर-त्थव तथा जय-मंगलं का सुन्दर समायोजन किया गया है।

नीति-संग्रह

-मुनि सुनीलसागर

- * कृति - णीदी-संगहो (नीति-संग्रह)
- * कृतिकार - मुनिश्री सुनीलसागरजी
- * सम्पादक - डॉ. (प्रो.) उदयचन्द जैन
- * संस्करण - वीर निर्वाण सम्वत् २५३०
दिसम्बर, २००३
- * आवृत्ति - प्रथम, १०००
- * प्रकाशक एवं
प्राप्ति स्थान - जैन साहित्य विक्रय केन्द्र
श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम
अशोकनगर, उदयपुर (राज.)
- * मूल्य - नीत्यानुसार आचरण (१६ रुपये)
- * मुद्रक - पारदर्शी प्रिन्टर्स
२६१, ताम्बावती मार्ग, आयड,
उदयपुर-३१३ ००१
दूरध्वनि - २४११०२९
- * अक्षरांकन - श्री राजेन्द्र कम्प्यूटर्स
आयड, उदयपुर (राज.)

NITI SANGAHO

By

MUNI SUNILSAGAR

मंगलम्

बीजांकुर न्याय के समान श्रुत ज्ञान की परम्परा और आचार्य परम्परा एक दूसरे के पूरक हैं । आचरन्ति यस्माद् व्रतानीत्याचार्यः ॥३॥ यस्मात् सम्यग्ज्ञानादि गुणाधारा हृदय व्रतानि स्वर्गापवर्ग सुखामृत वीजानिभव्या-हितार्थमाचरन्ति स आचार्यः । (त. वा. ९/२४)

जिनसे व्रतों को धारण कर उनका आचरण किया जाता है, वे आचार्य हैं । जिन सम्यग्दर्शन ज्ञान आदि गुणों के आधारभूत महापुरुषों से भव्य जीव स्वर्ग मोक्ष रूप अमृत के बीजभूत व्रतों को ग्रहण कर अपने हित के लिए आचरण करते हैं, व्रतों का पालन करते हैं व जो दीक्षा देते हैं वे आचार्य कहलाते हैं ।

बीसवीं सदी में सर्वप्रथम आचार्य परम्परा के प्रणेता प. पू. मुनि कुंजर आचार्य परमेष्ठी आदिसागर अंकलीकर का नाम लिया जाता है । उन्होंने अपनी आराधना से आराधित आत्मा-उद्भूत श्रुत ज्ञान को जिनधर्म रहस्य (संस्कृत) को मगशिर शुक्ला २ वि. सं. १९९८, उद्बोधन (कन्नड़) फाल्गुन शुक्ला ११ वि. सं. २००० सन् १९४३, प्रायश्चित्त विधान (प्राकृत) को भाद्रपद शुक्ला ५ वि. सं. १९७२ सन् १९९५, शिवपथ (संस्कृत) को माघ शुक्ला १४ वि. सं. २०००, अंतिम दिव्य देशना (कन्नड़) को फाल्गुन कृष्णा १३ वि. सं. २०००, दिव्य देशना (कन्नड़) को मगशिर शुक्ला २ वि. सं. १९९८ को प्रतिपादित करके अपने ज्ञान से जन-जन में प्रसारित किया है ।

इसी परम्परा को आचार्य महावीर कीर्ति ने फाल्गुन शुक्ला ग्यारस ११ सत्रह (१७ मार्च सन् १९४३) को ऊदगाँव में प. पू. मुनि कुंजर आचार्य परमेष्ठी आदिसागर अंकलीकर से मुनि दीक्षा लेकर और इसी वर्ष चातुर्मास में गुरु का आचार्य पद प्राप्त कर प्रबोधाष्टक (स्वोपज्ञ टीका) संस्कृत को फाल्गुन शुक्ला ११ वि. सं. २००१ सन् १९४४, शिवपथ (टीका) को मगशिर कृष्णा १० वि. सं. २००४ सन् १९४९, वचनामृत को मगशिर कृष्णा १० सं. २०००, जिनधर्म रहस्य (हिन्दी टीका) को फाल्गुन शुक्ला १३ वि. सं. २०१०, चतुर्विंशति स्तोत्र (संस्कृत) मगशिर शुक्ला ११ वि. सं. २०१८ इत्यादि ग्रन्थों को लिखा है । इस आचार्य परम्परा के साथ श्रुत परम्परा को आगे बढ़ाया ।

इसी कड़ी से जुड़े हुए निमित्त ज्ञान शिरोमणि आचार्य विमलसागर ने 'आचार्य आदि सागर अंकलीकर की परम्परा और शांतिसागर दक्षिण की परम्परा

इस युग में निर्बाध चली आ रही है। वात्सल्य से धर्म प्रभावना करें। इस सूत्र से श्रुत परम्परा को वृद्धिगत करने में अपना योगदान दिया है।

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी मुनि सुनीलसागरजी के ज्ञान का क्षयोपशम अच्छा है, अनेक भाषाओं पर आधिपत्य प्राप्त किया है। उदयपुर की उपलब्धि प्राकृत भाषा है। यह भाषा प्रायः सरल और सुगम है। प्रस्तुत ग्रन्थ 'णीदी संगहो' नाम का है तथा प्राकृत भाषा में है, अद्वितीय है। प्रत्येक मनुष्य की जो प्रवृत्ति होती है वह तीर्थ, व्यवहार, नीति, शासन इत्यादि के नाम से जानी जाता है। आचार्य अमृतचन्द्रसूरि ने पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय में लिखा है कि जो जैनी नीति पूर्वक प्रवर्तन करता है वह गंतव्य स्थान को प्राप्त होता है। यथा-

एकेनाकर्षन्ति श्लथयन्ति वस्तुतत्त्वमितरेण ।

अंतेन जयति जैनी नीतिमंथान नेत्रामवगोपी ॥२२४॥

वस्तु तत्त्व के एक पक्ष को आकर्षित करने पर दूसरा शिथिल हो जाता है। ऐसी यह जैनी नीति है। उस जैनी नीति के नाम को उद्घोष करते हुए पूज्यपाद आचार्य ने लिखा है। यथा-

श्रीमत्परमगंभीर, स्याद्वादमोघ लांच्छनं ।

जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य, शासनं जिनशासनं ॥

स्याद्वाद नामक नीति सर्वोत्कृष्ट है और गंभीर है उसी त्रिलोकीनाथ की नीति-शासन ही जिनशासन है, वह जयवन्त हो।

अन्य जितनी भी प्रकार की नीतियाँ हैं वे सब इसी का विस्तार है। दुर्नीति से दुर्गति और सुनीति से सुगति की प्राप्ति होती है। इससे प्रायः सर्वलोक सुपरिचित है। प्रस्तुत ग्रन्थ 'णीदी संगहो' नाम का ग्रन्थ भी उसी का कुछ अंश है। परन्तु इसकी विशेषता यह है कि इसकी नीतियाँ जीवों के लिए कल्याणकारक, हितकारक और अधिक तो क्या सर्वार्थ साधक है। संसार का हर एक प्राणी इसके स्वाध्याय करने से अपने जीवन को सुखमय अवश्य बना सकता है। अतः यह सर्वोपयोगी होने के कारण इसका प्रकाशन आवश्यक और उत्तम कार्य है। इसके लिए इस ग्रन्थ के सहयोगी सभी कार्यकर्त्ताओं को मेरा शुभ आशीर्वाद है।

ॐ आचार्य सन्मतिसागर

मगशिर शुक्ला १२ सं. २०६०

अपनी बात

आदि पुरुष, प्रथम तीर्थकर, विश्व-धर्मसाम्राज्य नायक भगवान ऋषभदेव ने राज्यावस्था में सम्पूर्ण भारत देश को बावन जनपदों में सुनियोजित कर जनता की सुख-समृद्धि के लिए षट्कर्मों का प्रतिपादन किया था। असि, मसि, कृषि, शिल्पकला, विद्या और वाणिज्य के माध्यम से जनता गृहस्थ-जीवन में सुस्थिर हुई। उन्होंने अपने पुत्रों को विविध शिक्षाएँ जनता में प्रसार हेतु प्रदान की। उन्होंने नारी-शिक्षा का सूत्रपात करते हुए ब्राह्मी को अक्षर विद्या का ज्ञान कराया। कालान्तर में वही लिपि ब्राह्मी-लिपि कहलाई। द्वितीय पुत्री सुन्दरी को अंक विद्या का ज्ञान कराते हुए, उन्होंने शून्य का आविष्कार किया। वाम हस्त से उन्होंने सुन्दरी को अंक विद्या का ज्ञान कराया था, जिस कारण आज भी गणित को बाईं तरफ से पढ़ा जाता है।

ब्राह्मी-लिपि ही कालान्तर में विविध शैलियों में अवतरित हुई। उसके ही अन्तर्गत आर्य-भाषा परिवार की एक भाषा शौरसेनी है और अर्द्धमागधी है। विद्वानों की मान्यता है कि भगवान महावीर स्वामी ने जनभाषा में उपदेश दिए थे, वे ही वचन आगम रूप में प्रसिद्ध हुए।

पुरा-काल की जनभाषा 'प्राकृत' विविध क्षेत्रों में प्रचलित रहने के कारण विविध रूपों में रही है और इसी कारण उसके विविध नाम हुए हैं। इन भाषाओं में 'शौरसेनी प्राकृत' अत्यन्त व्यापक और प्राचीन है। संस्कृत की जन्मदात्री होने का सौभाग्य प्राप्त करने वाली प्राकृत तत्कालीन संस्कृत नाटकों में भी अपने रूप में रही है। समय बदलते भाषाओं की लोकप्रियता बदलती रही, फिर भी प्राकृत के शब्द किसी न किसी रूप में बने ही रहे। कुछ शताब्दियों ने प्राकृत की दुर्दशा भी देखी है, परन्तु वर्तमान में इसके प्रचार-प्रसार को आचार्यप्रवर श्री विद्यानन्दजी के आशीर्वाद से गति मिल रही है। इसी दृष्टि से मैंने भी शौरसेनी प्राकृत में किञ्चित् लेखन किया है।

'प्राकृत' प्राचीनतम भारतीय संस्कृति तथा किन्हीं अर्थों में जैनों की मूलभाषा है। प्राकृत को जाने बिना किसी भी भाषा का ज्ञान सम्पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सकता है। यँ तो प्रकृत का सामान्य ज्ञान सभी को होना चाहिए, किन्तु जिनके मन में आदिब्रह्मा ऋषभदेव, नेमिनाथ, कृष्ण, महावीर,

बुद्ध आदि महापुरुषों की भाषा जानने की उत्कट अभिलाषा है, उन्हें प्राकृत के अन्तस्तल तक उतरना ही चाहिए। इसके अलावा जो प्राचीनतम साहित्य का आनन्द लेना चाहते हैं, उन्हें भी भाषा की प्रकृति का ज्ञान होना आवश्यक है। प्राकृत के प्रचार-प्रसार, अध्ययन-अध्यापन में प्रत्येक मनुष्य की रुचि होनी चाहिए, क्योंकि ब्राह्मी लिपि से अवतरित हुई यह प्राकृत ही मानव-भाषा की जननी है।

‘णीदी-संगहो’ नामक यह कृति एक प्रकार से लोक प्रचलित नीतियों का संग्रह मात्र है। सुप्रसिद्ध जैन राजनीतिज्ञ एवं अर्थशास्त्री चाणक्य की कई नीतियाँ तो केवल रूपान्तरित होकर ही प्रस्तुत कृति में समा गई हैं। अन्य अनेक जैनाचार्यों के वाक्यांश भी इसमें संग्रहीत हो गए हैं। यह नीतियाँ अध्येताओं के लिए अवश्य ही लाभदायक सिद्ध होंगी, ऐसा मेरा विश्वास है। नीतियों के संग्रह एवं रूपान्तरण में समय का सदुपयोग, जन कल्याण एवं प्राकृत के प्रचार-प्रसार की भावना रही है।

आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) के तृतीय पट्टाधीश आचार्य श्री सन्मतिसागरजी के आशीर्वाद, मुनिश्री श्रेष्ठसागरजी एवं मुनिश्री सुन्दरसागरजी के सुझाव तथा डॉ. उदयचन्द्र जैन के सहयोग व मेरी कक्षा के जिज्ञासु विद्यार्थियों के आग्रह से प्रस्तुत कृति इस रूप में आ पाई है।

वीर निर्वाण संवत् २५३०

१४ नवम्बर २००३

हूमड़ भवन, उदयपुर (राज.)

✍ मुनि मुनीलसागर

सम्पादकीय

साहित्य जीवन निर्माण और समष्टि के लिए विराट् दिशा निर्दिष्ट करता है। उसकी अभिव्यक्ति में निकटता, जीवन की गंभीरता और परिवर्तन की मार्मिक भावनाएँ समाहित रहती हैं। इसमें यथार्थ का परिशोध होता है, जो धर्म और दर्शन की भूमि प्रदान करता है। इसमें-सृष्टि की श्रेष्ठतम रचना होती है जो मनुष्य और सम्पूर्ण जीव जगत को आनन्द प्रदान करता है। इसके सृजन में नये संवेदन जन्म लेते हैं। नये सौन्दर्य बोध का उदय होता है और नये-नये विचारों के कारण विश्वास का स्मरण होता है। इसके मूल में सत् चित् और आनन्द का स्वरूप होता है जो चरम स्थिति तथा ज्ञान के उत्कर्ष की ओर ले जाता है। सत् मनुष्य में आत्म-अभिव्यक्ति कराता है उससे ज्ञान का सम्पूर्ण विचार-विमर्श लेकर परम ज्योति प्रदान करता है। चित् शक्ति का उत्कर्ष है जो भारती, वाणी, सरस्वती, वाग्देवता, श्रुत देवी आदि के रूपों को प्रदान करता है। आनन्द तत्त्व में जीवन का संतुलन रहता है, इसमें रमणीयता का भाव भी होता है। आनन्द सोऽहं का पाठ पढ़ता है। यह मुक्ति का सोपान है।

साहित्यकार की अभिव्यक्ति में काव्य और शास्त्र ये दोनों दृष्टियाँ समाहित होती हैं। शास्त्र में श्रेय रहता है और काव्य में अनुभूतियों का प्रयत्न रहता है। वस्तुतः साहित्य सृजन समग्र जीवन और समस्त शक्तियों से जुड़ा रहकर महानता की ओर ले जाता है। विषय वैविध्य की दृष्टि से साहित्य समाज का दर्पण बन जाता है। यही श्रेष्ठतम संस्कृति का द्योतक बनकर व्यष्टि रूप अनुभूति को समष्टी रूप प्रदान करता है। उसमें निहित अनुभव विविध आयामों को प्रस्तुत करता है। उसमें कहीं प्रेम की मंदाकिनी बहती है तो कहीं पर करुणा रस की धारा भी गतिशील बनी रहती है और कहीं इसकी मुक्त शैली इस माधुरी को अभिव्यक्त करने में भी नहीं चूकती है। निस्संदेह साहित्य जीवन के सभी प्रश्नों के समाधानों में लगा हुआ भाव, रस, माधुर्य और सुख-दुख के वातावरण को भी प्रस्तुत करता है।

प्राकृत साहित्य का अपना एक पृथक वैशिष्ट्य है। जिसमें प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही प्रकार के काव्यों का प्रणयन हुआ है। जो काव्य की अविरल धारा से जुड़ा हुआ सहृदयों के हृदय को परितृप्त कर रहा है। इसमें लोक की अभिव्यक्ति है। इनके प्रबन्ध में व्यापकता है। बड़े-बड़े प्रबन्ध शलाका पुरुषों के मौलिक रूप को उद्घाटित करते हैं, उनके मूल में धर्म, दर्शन और सिद्धांत की गहराई भी

समाहित है। महाकाव्य, खण्डकाव्य, कथाकाव्य, स्तुतिकाव्य आदि काव्यों की लम्बी परम्परा है। प्राकृत में आगम परम्परा से लेकर रस, छन्द, अलंकार के प्रबन्ध में व्यापकता प्रदान करते हुए इक्कीसवीं शताब्दी में भी प्राकृत में कुछ न कुछ लिखा जा रहा है। क्योंकि प्राकृत व्यापक जीवन के विस्तार से जुड़ी हुई है। इसकी वनस्थली व्यापक है, इसकी शोभा, पुष्प, गुच्छों में समाहित है और इसकी विशेषता अतिशोभन है।

प्रबन्ध की व्यापकता के साथ-साथ नीति, वचन प्रत्येक युग में अनुभूति प्रदान करते रहें हैं। उनमें बाह्य उपकरणों से मुक्त सहज रस, सहज स्मरणीय चिंतन एवं वस्तुस्थिति के प्रस्तुतीकरण के भाव होते हैं। नीति रस भरे वाक्य मोदकों के समान हैं। जिनके आस्वाद से सहृदय रस चर्चणा के साथ धर्म तत्त्व का समावेश होता है, जिसमें पाठक विवेक को जागृत करता है। वर्तमान जीवन में अनेक कुण्ठाएँ हैं, द्वन्द्वात्मक स्थितियाँ हैं और भौतिक जगत की चारों ओर चकाचौंध भी है ऐसे समय में सरल, शान्त, भावनाशील, धर्म, अहिंसा, ज्ञान, ध्यान, तप आदि से जुड़ी हुई नीतियाँ वैयक्तिक जीवन को नियमित करने में समर्थ होती हैं।

प्रबोधाय विवेकाय, हिताय प्रशमाय च ।

सम्यक् तत्त्वोपदेशाय, सतां सूक्तिः प्रवर्तते ॥

आचार्य शुभचन्द्र ने सच ही कहा है नीति वचन युक्त सूक्तियाँ अन्तःकरण को जागृत करने के लिए हैं। ये विवेक के लिए, लोककल्याण के लिए, विकार शान्त करने के लिए तथा तत्त्व उपदेश के लिए होती हैं। उपदेश में भी वीतराग के वचन, सर्वज्ञ की वाणी, प्रभावशील होती है। उससे सुप्त चेतना प्रबुद्ध होती है। अंतरपटल का मोह आवरण हटता है। मंदाकिनी का निर्मल नीर शुद्ध बनाता है और इनके भावों में प्रविष्ट व्यक्ति भव-भव के संताप को दूर करने में समर्थ होता है।

मुनि सुनीलसागर के 'णीदी संगहो' नामक प्राकृत प्रस्तुति में निम्न विशेषताएँ हैं-

१. धर्म का शाश्वत आनन्द २. दर्शन की सुगन्ध ३. जीवन का निनाद ४. कला की अपूर्वशक्ति ५. सदाचार की संजीवनी ६. शिक्षा तत्त्व ७. बोध सूत्र

धर्म नीति व्यक्ति को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, ज्ञान, तप आदि की ओर ले जाती है। धर्म नीति से कार्य और अकार्य की पहिचान भी होती है। यथा-

अहीएज्र जहा सत्थं, जाणंति अप्पणो णरा ।
तहा णीदी सुसत्थाणं, कज्जाकज्जं कहेज्ज हं ॥

जिन दर्शन की भावना में श्रद्धा, साधना, समभाव, वीतराग भाव, तत्त्वचिंतन आदि का समावेश होता है जो व्यक्ति प्रतिदिन अत्यन्त भक्तिभाव से जिनेन्द्र भगवान का दर्शन पूजन, स्तवन, अभिषेक एवं जप आदि करता है वह महावैभव के साथ स्वर्ग या मोक्ष को अवश्य प्राप्त होता है । जिन-वंदन, श्रद्धा अर्चना आदि से आयु विद्या, बल और यश बढ़ता है यथा-

जिण-वंदण-सीलरस्स, णिच्चं वुड्ढोवसेविणो ।
वत्तारि तरस्स वड्ढंते, आऊ विज्जा बलं जसो ॥५ ॥

इसी तरह अन्य प्रस्तुतीकरण में भी विनय, वैराग्य भाव, संयम, श्रमण-धर्म, इन्द्रियनिग्रह, मनोनिग्रह, क्षमा, कषाय-विजय, साधक-जीवन की भूमिका, राग-द्वेष विकार पर विजय आदि का भी विवेचन है। इसमें शिक्षा के सूत्र हैं, मनुष्य जन्म की सार्थकता है, विषय भोगों से विरक्ति भी है । इसमें लोक नीति संग्रह, नीति शतक के रूप में प्रस्तुत है । क्योंकि इसमें आत्मनिष्ठा का भी समावेश है । आत्मानुभूति परक वचन उल्लासमयी हैं, जो विशुद्ध आत्मचिंतन को भी प्रदान करने वाले हैं ।

शतक काव्य की परम्परा में आचार्य समन्तभद्र का जिनस्तुति शतक, संस्कृत का प्रमुख शतक काव्य है । प्राकृत में मुक्तक काव्य के रूप में प्रसिद्ध वज्रालङ्गं और गाथसत्तसई प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त अन्य भी कई नीति प्रधान रचनाएँ 'प्राकृत' के सामृध्य की गाथा गा रही हैं ।

त्रिभाषा कवि मुनि श्री सुनीलसागरजी ने इक्कीसवीं शताब्दी में तपस्वीराज आचार्य श्री सन्मत्तिसागरजी के अनन्य आशीष से धर्म और दर्शन के क्षेत्र में कुछ न कुछ कहने एवं लिखने का अनुपम प्रयास किया है । वे धर्म, दर्शन, विज्ञान, व्याकरण, इतिहास तथा साहित्य के उत्कृष्ट अध्येता, प्रखर-वक्ता, बहुभाशाविद् तथा साहित्य की प्रत्येक विधा में लेखन करने वाले युवामुनि हैं, उनके प्रस्तुत चिन्तन में व्रतों की श्रेष्ठता, उनका महाम्य एवं धार्मिकता के सच्चे स्वर हैं । वे धार्मिकता में 'धम्मिकते य सद्दया' जैसे सूत्र को देकर दया को मनुष्ययोनि का सारभूत मानते हैं । वे यह भी कथन करते हैं कि लोक में किसी भी जीव के प्रति क्लेश का भाव भयंकर दुःख का कारण होता है । वे अहिंसा को जहाँ जीवन का प्राण मानते हैं, वहीं सत्य को 'सव्व सत्तोवयारी' भी मानते हैं । वे मनुष्यों को

अस्तेय का पाठ पढ़ाते हैं तथा यह भी कहते हैं कि जहाँ शील है, वहाँ साधक है, उसी से साधक निर्मल यश को प्राप्त करता है ।

**णिसीला पुरिसा णारी, इहेव कुक्करा इव ।
लहंते वध-बंधादि, परत्थ णिसयं परं ॥२०॥**

इस सूक्ति वचन में कुत्ते के उदाहरण द्वारा यह शिक्षा दी गई कि जो व्यक्ति शील से रहित होते हैं, वे इस भव में वध बन्धन तथा परभव में भयंकर नरक को प्राप्त होते हैं । विषय एवं शब्दचयन आदि के साथ-साथ इस काव्य रचना में अनेक दृष्टान्त हैं । जो व्यक्ति को स्थिरता प्रदान करते हैं ।

इनके गीति के मूल में अध्यात्ममयी स्वर साधना है, उसी के आधार पर जन-जन को आत्मयोग का पाठ पढ़ाना चाहते हैं । यह एक ऐसी दशा है जिसमें पूर्ण सागर की गंभीरता है, अनन्त उर्मियों की दिव्यता है । कोमल कल्पना के साथ-साथ काव्य जगत् के माधुर्य गुण का आस्वादन भी है । मुनि सुनीलसागर काव्य की रमणीयता में भी आत्म रसानुभूति के स्वाभाविक चित्रण को गति प्रदान करते हैं । अपनी स्वल्प अनुभूति के काव्यगत भावों में प्रविष्ट, असीम गंभीरता के स्वर इस बात को प्रमाणित करते हैं कि आत्मीयता स्वानुभूति है, जो अनिवार्य है और वही राग के मूलभावों से हटाकर परम आनन्द की ओर ले जाती है । वस्तुतः नीति संग्रह आत्मा का स्वानुगत रूप है । आनन्द का अनुभव है । ममत्व और परत्व की भावना से रहित विशुद्ध तत्त्व का अनुरंजित कारण है ।

जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग

डॉ. उदयचन्द जैन

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

फोन - २४९९९७४

॥ णमोत्थु वीदरागाणं ॥

णीदी-संगहो

धम्म-णीदी

मंगलाचरण

वीयराएण णिद्धिद्वं, जिणधम्माण णिम्मलं ।
सव्वण्हूणं च सत्थाणं, तिजोएण णमामि हं ॥१॥

अन्वयार्थ- (वीयराएण णिद्धिद्वं) वीतराग द्वारा निर्दिष्ट (णिम्मलं) निर्मल (जिणधम्माण) जिनधर्म (सव्वण्हूणं) सर्वज्ञों (च) और (सत्थाणं) शास्त्रों को (हं) मैं (तिजोएण) त्रियोगों से (णमामि) नमन करता हूँ ।

भावार्थ- जन्म-जरा-मृत्यु आदि सम्पूर्ण दोषों से रहित वीतराग जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित (प्रसारित) जिनधर्म को, सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त सर्वज्ञ परमात्माओं और उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलने वाले साधुओं तथा उनकी वाणी के अनुसार रचे गये समस्त शास्त्रों को मैं मन-वचन-कायरूप तीनों योगों से नमस्कार करता हूँ ।

अहीएज्ज जहा सत्थं, जाणंति अप्पणो णरा ।
तहा णीदी सुसत्थाणं, कज्जाकज्जं कहेज्ज हं ॥२॥

अन्वयार्थ- (जहा) जिस प्रकार (सत्थं) शास्त्र को (अहीएज्ज) पढ़कर (णरा) मनुष्य (अप्पणो) आत्मा को (जाणंति) जानते हैं (तहा) उसी प्रकार (णीदी सुसत्थाणं) नीति के सुशास्त्रों को [पढ़कर] (कज्जाकज्जं) कार्य-अकार्य को [जानते हैं, अतः] (हं) मैं [नीति-संग्रह को] (कहेज्ज) कहूँगा ।

भावार्थ- जिस प्रकार सच्चे शास्त्रों का अध्ययन कर मनुष्य अपने आत्मतत्त्व को, जीवादि पदार्थों को तथा हेय-उपादेय को जानते हैं, उसी प्रकार अच्छे नीतिशास्त्रों का अध्ययन कर लौकिक कार्य-अकार्य को भी जानते हैं, अतः मैं 'नीति-संग्रह' को कहता हूँ ।

यहाँ 'कहेज्ज' पद का सृजन यह स्पष्ट करने के लिए हुआ है कि मैं यहाँ कही जाने वाली नीतियों का संयोजक मात्र हूँ, मूल कर्ता नहीं ।

**सव्वे रोगा भया सव्वे, सव्वे दुक्खा य दुग्गिहा ।
जिणिंदत्थुदि मत्तेण, णस्सेंति णत्थि संसओ ॥३॥**

अन्वयार्थ- (सव्वे रोगा) सभी रोग (भया सव्वे) सभी भय (सव्वे दुक्खा) सभी दुःख (य) और (दुग्गिहा) दुर्ग्रह (जिणिंदत्थुदि मत्तेण) जिनेन्द्र स्तुति मात्र से (णस्सेंति) नष्ट हो जाते हैं [इसमें] (संसओ) संशय (णत्थि) नहीं है ।

भावार्थ- सभी रोग (बीमारियाँ), सभी भय, सभी दुःख और सभी दुर्ग्रह (खोटे ग्रह) वीतरागी जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करने से ही नष्ट हो जाते हैं, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिए ।

**जो करेदि जिणिंदाणं, पूयणं ण्हवणं जवो ।
सो पत्तूण महाविहवं, सगं मोक्खं च पावदे ॥४॥**

अन्वयार्थ- (जो) जो मनुष्य (जिणिंदाणं) जिनेन्द्र भगवान का (पूयणं) पूजन (ण्हवणं) अभिषेक (जवो) जप (करेदि) करता है, (सो) वह (महाविहवं) महावैभव को (पत्तूण) प्राप्तकर (सगं) स्वर्ग (च) और (मोक्खं) मोक्ष को (पावदे) पाता है ।

भावार्थ- जो विवेकी मनुष्य प्रतिदिन अत्यन्त भक्तिभाव से जिनेन्द्र भगवान का दर्शन, पूजन, स्तवन, अभिषेक और जप

करता है, वह निश्चित ही धन-सम्पत्ति, ख्याति-पूजा आदि महावैभव को प्राप्त करके उत्तम स्वर्ग सुख को और कालान्तर में मोक्ष को प्राप्त करता है ।

**जिण-वंदण-सीलस्स, णिच्चं वुड्ढोवसेविणो ।
चत्तारि तस्स वड्ढंते, आरु-विज्जा-बलं जसो ॥५॥**

अन्वयार्थ- (जिण-वंदण-सीलस्स) जिनेन्द्र-वन्दना के स्वभाव वाले के (णिच्चं) हमेशा (वुड्ढोवसेविणो) वृद्धजनों की सेवा करने वाले (तस्स) उसके (आरु-विज्जा-बलं जसो) आयु, विद्या, बल [और] यश [ये] (चत्तारि) चार (वड्ढंते) बढ़ते हैं ।

भावार्थ- वीतरागी जिनेन्द्र भगवान के दर्शन-पूजन में जो निरन्तर लीन रहते हैं तथा जो ज्ञानवृद्ध, चारित्र्यवृद्ध, तपवृद्ध तथा वयोवृद्ध जनों की हमेशा यथायोग्य-यथाशक्य सेवा करते हैं; उनकी आयु, विद्या, बल और यश ये चार वृद्धि को प्राप्त होते रहते हैं ।

**सयलव्वद-मज्झम्मि, अहिंसा जणणी भणे ।
खणि-सव्वगुणाणं च, भूमी धम्मतरुस्स हि ॥६॥**

अन्वयार्थ- (सयलव्वद-मज्झम्मि) सभी व्रतों में (हि) वस्तुतः (अहिंसा जणणी) अहिंसा व्रत माता के समान (सव्वगुणाणं) सभी गुणों की (खणि) खान (च) और (धम्मतरुस्स) धर्मरूपी वृक्ष की (भूमी) भूमि (भणे) कहा गया है ।

भावार्थ- सभी श्रेष्ठ व्रतों में अहिंसा व्रत को ही वस्तुतः सभी व्रतों को उत्पन्न करने में माता के समान, समस्त गुणों की खान और धर्मरूपी वृक्ष की भूमि कहा गया है । अहिंसा व्रत के बिना अन्य व्रतों का, तपों का निश्चयतः कुछ भी महत्त्व नहीं है । अतः अहिंसा व्रत की परिपालना पर विशेष जोर देना विवेकीजनों का कर्तव्य है ।

आऊ-बलं सुरुवं च, सोहगं किति-पूयणं ।
अहिंसा-वद-माहप्पा, सगं मोक्खं च जायदे ॥७॥

अन्वयार्थ- (अहिंसा-वद-माहप्पा) अहिंसा व्रत के माहात्म्य से (आऊ-बलं सुरुवं) आयु, बल, सुन्दर-रूप (सोहगं किति-पूयणं) सौभाग्य, कीर्ति, पूजा, (सगं) स्वर्ग (च) और (मोक्खं) मोक्ष (जायदे) [प्राप्त] होता है ।

भावार्थ- सभी व्रतों की जड़स्वरूप अहिंसा व्रत के सम्यक् परिपालन से मनुष्य आयु, बल, सुन्दर रूप, सौभाग्यशीलता, ख्याति, पूजा-सम्मान तथा मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग और मोक्ष के उत्तम सुखों को प्राप्त करता है ।

संसारे माणुसं सारं, कुलत्तं चावि माणुसे ।
कुलत्ते धम्मिकत्तं च, धम्मिकत्ते य सद्वया ॥८॥

अन्वयार्थ- (संसारे माणुसं) संसार में मनुष्यता (माणुसे) मनुष्यत्व में (कुलत्तं) कुलीनत्व (कुलत्ते) कुलीनत्व में (धम्मिकत्तं) धार्मिकत्व (च) और (धम्मिकत्ते) धार्मिकता में (चावि) भी (सद्वया) सच्ची दया (सारं) सारभूत है ।

भावार्थ- इस अनन्त संसार में चौरासी लाख योनियों में मनुष्य योनि ही सारभूत है, उसमें भी कुलीनता-आचरणशीलता सारभूत है, कुलीनता में भी धार्मिकता सारभूत है और धार्मिकता में भी सच्ची दया-करुणा सारभूत है ।

सव्वदाणं कयं तेण, सव्वे जग्गा य पूयणं ।
सव्व-तित्थाहिसेगं च, जो सव्वे कुणदे दया ॥९॥

अन्वयार्थ- (तेण) उसने (सव्वदाणं) सभी दान (सव्वे जग्गा य पूयणं) सभी यज्ञ और पूजन (च) तथा (सव्व-तित्थाहिसेगं) सभी तीर्थों का अभिषेक (कयं) किया (जो) जो (सव्वे) सभी पर (दया) दया (कुणदे) करता है ।

भावार्थ- जो व्यक्ति सभी जीवों पर दया करता है, मानना चाहिए कि उसने ही सभी प्रकार के दान, सभी प्रकार के सात्विक यज्ञ और पूजन तथा सभी तीर्थों की वन्दना अथवा तत्रस्थ जिनबिम्बों का अभिषेक किया है ।

बलेड्डो जो णरो लोए, घादं करेदि णिब्बलं ।

सो परत्थ वि पप्पोदि, तम्हा दुक्खमणेगसो ॥१०॥

अन्वयार्थ- (लोए) लोक में (जो) जो (बलेड्डो णरो) बलवान मनुष्य (णिब्बलं) निर्बलों का (घादं) घात (करेदि) करता है (सो) वह (परत्थ वि) परलोक में भी (तम्हा) उससे (अणेगसो दुक्खं) अनेकों दुःखों को (पप्पोदि) प्राप्त करता है ।

भावार्थ- इस लोक में जो बलवान मनुष्य, निर्बल जीव-जंतु, पशु-पक्षियों अथवा मनुष्यों को सताते हैं, मारते हैं, वे इस पाप के फल से उनके द्वारा परलोक में भी अनेक दुःखों को पाते हैं । अतः किसी भी जीव को दुःख नहीं पहुँचाना चाहिए ।

सामी-थी-बालहंताणं, सिग्घं फलदि पादगं ।

इह लोए परो लोए, पावंति दुह दारुणं ॥११॥

अन्वयार्थ- (सामी-थी-बालहंताणं) स्वामी, स्त्री और बालकों को मारने वालों का (पादगं) पातक (सिग्घं) शीघ्र (फलदि) फलता है [जिससे वे] (इह लोए) इस लोक में [और] (परलोए) परलोक में (दारुणं-दुह) भयंकर दुःखों को (पावंति) पाते हैं ।

भावार्थ- स्वामी अर्थात् आजीविका देने वाला मालिक स्त्री अर्थात् कोई भी महिला तथा बालक, चाहे वह गर्भ में ही क्यों न हो, इनकी हत्या करने वाले अतिशीघ्र ही इस लोक में तथा परलोक में किए हुए पाप के महान् फल को भयंकर दुःख पाते हुए भोगते हैं ।

बाल-बुद्धेसु हीणेसु, इत्थीजणे य दुब्बले ।
बाहीजुत्तेसु मूढेसु, जेसिं दया ण ते णरा ॥१२॥

अन्वयार्थ- (बाल-बुद्धेसु) बालकों में, वृद्धों में (हीणेसु) हीन अंग धारियों में (इत्थी जणे) स्त्रीजनों में (दुब्बले) दुर्बल में (बाहीजुत्तेसु) व्याधियुक्तजनों में (य) और (मूढेसु) मूर्खों में (जेसिं) जिनकी (दया ण) दया नहीं है (ते) वे (णरा) मनुष्य [णो] नहीं है ।

भावार्थ- बालकों पर, वृद्धजनों पर, लंगड़े-लूले-अंधे-बहरे मनुष्यों पर, महिलाओं पर, दुर्बल अर्थात् कमजोर मनुष्यों पर, पशुओं पर, विभिन्न रोगों से ग्रस्त दुःखीजनों पर और मूर्ख अर्थात् मानसिक बीमारी से युक्त मंदबुद्धिजनों पर जिनके मन में दया नहीं उमड़ती वे मनुष्य देहधारी होकर भी मनुष्य नहीं हैं ।

असच्चं अहिदं गव्वं, कक्कसं मम्मभेदगं ।
जिणसत्थ-विरुद्धं च, णो भणेज्ज बुहो वचो ॥१३॥

अन्वयार्थ- (असच्चं) असत्य (अहिदं) अहितकर (गव्वं) गर्वयुक्त (कक्कसं) कर्कश (मम्मभेदगं) मर्मभेदी (च) और (जिणसत्थ-विरुद्धं) जिनशास्त्रों के विरुद्ध (वचो) वचन (बुहो) बुद्धिमान् (णो) नहीं (भणेज्ज) बोले ।

भावार्थ- असत्य, अपना तथा दूसरों का अहित करने वाले, अत्यन्त अभिमान सहित, कठोर, मर्म को भेदने वाले और जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा के विरुद्ध अर्थात् सच्चे शास्त्रों से विपरीत वचन बुद्धिमान् मनुष्य नहीं बोले ।

मोणमेव हिदं पुंसं, सुहं सव्वत्थसिद्धए ।
भासं भासेज्ज सच्चं हि, सव्व सत्तोवयारी जं ॥१४॥

अन्वयार्थ- (सुहं सव्वत्थसिद्धए) सुख, सर्वार्थसिद्धि के लिए (पुंसं) पुरुष को (मोणमेव) मौन ही (हिदं) हितकर है [यदि बोलना

पड़े तो] (जं) जो (सव्वसत्तोवयारी) सब जीवों का हित करने वाला है [ऐसा] (सच्चं) सत्य (भासं) वचन (हि) ही (भासेज्ज) बोलना चाहिए ।

भावार्थ- वास्तविकता तो यह है कि मनुष्य को सब सुख और सब कार्यों की सिद्धि कराने वाला एक शान्त-भावों से मौन रहना ही श्रेयस्कर है, किन्तु यदि बोलना पड़े तो जो सभी जीवों के लिए हितकर हो ऐसा सत्य वचन ही बोलना चाहिए ।

**गाणं विज्जा विवेगं हि, सुस्सरत्तं च धारणं ।
वादित्तं सुकवित्तं च, सच्चादो जीव पावदे ॥१५॥**

अन्वयार्थ- (गाणं-विज्जा-विवेगं) ज्ञान, विद्या, विवेक (सुस्सरत्तं) सुस्वरत्व (धारणं) धारणा (वादित्तं) वादित्व (च) और (सुकवित्तं) सुकवित्व (सच्चादो) सत्य से (हि) वस्तुतः (जीव) जीव (पावदे) पाता है ।

भावार्थ- ज्ञान-शास्त्रज्ञान, विद्या-विशेष गूढज्ञान, विवेक-प्रयत्नशीलता युक्त बुद्धि, सुस्वरत्व, धारणा, वादित्व और सुकवित्व अर्थात् अच्छी कविता बनाने की क्षमता ये सभी बातें एक मात्र सत्य धर्म के प्रभाव से ही जीव प्राप्त करता है ।

**मूगत्तं मदिवेकल्लं, मूढत्तं लोय-णिंदयं ।
बहिरत्तं च रोगत्तं, असच्चादो हि देहिणं ॥१६॥**

अन्वयार्थ- (मूगत्तं) मूकपना (मदिवेकल्लं) बुद्धि की मन्दता (मूढत्तं) मूर्खपना, (लोय-णिंदयं) लोकनिन्दता (बहिरत्तं) बधिरता (च) और (रोगत्तं) रोगग्रस्तता (हि) वस्तुतः (असच्चादो) असत्य से ही (देहिणं) देहधारियों को होती है ।

भावार्थ- मूकपना-बोल नहीं पाना, बुद्धि की मन्दता-पागलपन, मूर्खता, ज्ञानहीनता, बहिरापन और हमेशा रोग ग्रस्तता ये सभी दोष मनुष्यों को असत्य बोलने से प्राप्त होते हैं ।

धण-धणं सुइत्थिं च, गेह-वत्थादि वेहवं ।
तेसिं हवंति बाहुल्लं, अत्थेयं जेसु णिम्मलं ॥१७॥

अन्वयार्थ- (धण-धणं) धन-धान्य (सुइत्थिं) सुन्दर, सुशील स्त्री (गेह-वत्थादि वेहवं) मकान, वस्त्रादि वैभव (तेसिं) उनके (बाहुल्लं) बहुलता से (हवंति) होते हैं, (जेसु) जिनमें (णिम्मलं) निर्मल (अत्थेयं) अस्तेय [होता है ।]

भावार्थ- धन, धान्य, सुन्दर सुशील स्त्री, आलीशान-बंगला, घर-मकान, खेत-खलिहान, सोना-चाँदी तथा वस्त्रादि वैभव उनके यहाँ बहुलता से होते हैं, जो निर्मल अस्तेय-अचौर्यव्रत का पालन करते हैं ।

सीलं हि सु-सहावं च, सीलं च वद-रक्खणं ।
बंभचेर-मयं सीलं, सीलं सग्गुण-पालणं ॥१८॥

अन्वयार्थ- (हि) वस्तुतः (सु-सहावं) सुस्वभाव (सीलं) शील है (वद-रक्खणं) व्रत-रक्षण (सीलं) शील है (बंभचेर-मयं) ब्रह्मचर्य-मय (सीलं) शील है (च) और (सग्गुण-पालणं) सद्गुणों का पालन (सीलं) शील है ।

भावार्थ- निश्चयदृष्टि से स्वात्मलीनता-स्वभाव परिणति को ही शील कहा है, यह शील स्वभाव सिद्ध भगवन्तों को प्राप्त है । व्रतों की रक्षा में हमेशा तत्पर रहना शील (मर्यादा) है, यह सविकल्प साधकों में मुख्यतः पाया जाता है । ब्रह्मचर्य अर्थात् आत्म-चारित्रमय होकर रहना शील है, यह मुख्यतः निर्विकल्प साधकों में होता है और सद्गुणों की रक्षा करना, पालन करना भी शीलव्रत कहलाता है, यह सभी विवेकी गृहस्थों में, साधकों में होता है/होना चाहिए ।

देवा समीवमाएंति, पूजयंति य भूभुजो ।
परभवे सु गदी होदि, सीलेण णिम्मलं जसो ॥१९॥

अन्वयार्थ- (गिम्मलं सीलेण) निर्मल शील से (जसो) यश होता है (देवा समीवमाएति) देवगण पास में आते हैं (भूभुजो) राजागण (पूजयंति) पूजते है (य) और (परभवे) परभव में (सु-गदी) अच्छी गति (होदि) होती है ।

भावार्थ- निर्मल शीलव्रत (ब्रह्मचर्य) के पालन करने से देवगण पास आते है, राजा लोग पूजा-सम्मान करते है, परभव अर्थात् मरण के बाद दूसरे जन्म में सुगति होती है और इस भव तथा परभव में यश फैलता है ।

**गिस्सीला पुरिसा णारी, इहेव कुक्करा इव ।
लहंते वध-बंधादि, परत्थ-णिरयं परं ॥२०॥**

अन्वयार्थ- (गिस्सीला) शील रहित (पुरिसा-णारी) पुरुष-स्त्रियाँ (कुक्करा इव) कुत्ते के समान हैं [वे] (इहेव) यही पर ही (वध-बंधादि) वध-बंधन आदि (लहंते) पाते है [तथा] (परत्थ) परगति में (परं) भयंकर (णिरयं) नरक को [पाते हैं] ।

भावार्थ- जो पुरुष और स्त्रियाँ शील (एकदेश ब्रह्मचर्य) रहित हैं, वे कुत्तों के समान जिस किसी से भी संबंध बनाते रहते हैं अथवा लोगों की दृष्टि में वे कुत्तों के समान गिने जाते हैं । वे इस भव में यहाँ पर तो वध-मारपीट, बंधन-कैद की सजा आदि पाते ही हैं तथा मरकर भी वे दूसरे भव में भयंकर नरक को पाते हैं ।

**जो तवस्सी वदी मोणी, णाण-जुत्तो जिदिंदियो ।
कलंकयदि गिस्संक, इत्थीसंगेण सो वि य ॥२१॥**

अन्वयार्थ- (जो) जो (तवस्सी) तपस्वी, (वदी) व्रती (मोणी) मौनी, (णाणजुत्तो) ज्ञानयुक्त, (य) और (जिदिंदियो) जितेन्द्रिय हैं (सो वि) वह भी (इत्थीसंगेण) स्त्री-संगति से (गिस्संक) निश्चित (कलंकयदि) कलंकित होता है ।

भावार्थ- जो घोर तपस्वी है, ब्रती है, मौन धारण करने वाला है, ज्ञानयुक्त और इन्द्रियों को जीतने वाला है, यदि ऐसा गुण सम्पन्न साधक भी स्त्रियों की निरन्तर संगति करता है, तो वह भी निश्चित ही लोकापवाद का पात्र होता है, साधारण जनों की तो बात ही क्या है ।

**असुचिमय-देहम्हि, दुग्गंधे मेज्झमंदिरे ।
रमंते राइणो थीए, विरमंति सुही जणा ॥२२॥**

अन्वयार्थ- (थीए) स्त्रियों के (दुग्गंधे) दुर्गन्धित (मेज्झमंदिरे) मलमूत्र के घर (असुचिमय देहम्हि) अशुचिमय देह में (राइणो) रागीजीव (रमंते) रमते हैं [तथा] (सुही जणा) सुधीजन (विरमंति) विरक्त होते हैं ।

भावार्थ- स्त्रियों के तथा खुद के अत्यंत दुर्गन्धयुक्त, मलमूत्र, खून पीब से भरे हुए निम्नतम घृणित अशुचिमय ही जो है, ऐसे शरीर में मूढ-मोही जीव राग करते हैं, किन्तु इसके विपरीत विवेकी जन उससे विरक्त होते हैं तथा ममत्व का त्याग कर देते हैं ।

**मुच्छा-घिणा-भमो-कंपो, समो सेदंगविक्रिया ।
खयरोगादि दोसा य, मेहुणेणं सरीरिणं ॥२३॥**

अन्वयार्थ- (सरीरिणं) शरीरधारियों को (मेहुणेणं) मैथुन से (मुच्छा-घिणा-भमो-कंपो-समो सेदंगविक्रिया) मूर्च्छा, घृणा, भ्रम, कंप, श्रम, स्वेद, अंग विकृति (य) और, (खयरोगादि) क्षयरोगादि [अनेक] (दोसा) दोष, [होते हैं] ।

भावार्थ- शरीरधारी जीवों को मैथुन करने से अनेक हानियाँ उठानी पड़ती हैं, जिनमें मूर्च्छा आना, भ्रम-मन की अस्थिरता, शरीर कंपन, श्रम-शारीरिक थकान, पसीना आना, अंग विकृत हो जाना और क्षय रोग आदि अनेक बीमारियाँ और अनेक दोष शामिल हैं ।

आऊ तेजो बलं विज्ञा, पण्णा धणं महाजसो ।
पुण्णं सुपीदीमत्तं च, णस्सेंति हि अबंभदो ॥२४॥

अन्वयार्थ- (अबंभदो) अब्रह्मचर्य से, (आऊ तेजो बलं विज्ञा पण्णा धणं महाजसो पुण्णं) आयु, तेज, बल विद्या, प्रज्ञा, धन, संपत्ति महायश-पुण्य (च) और (सुपीदीमत्तं) अत्यन्त प्रीतिमत्ता (हि) निश्चित ही (णस्सेंति) नष्ट हो जाते हैं ।

भावार्थ- अब्रह्मचर्य अर्थात् मैथुन सेवन से (कुशील से) आयु तेज, शारीरिक शक्ति, विद्या, प्रज्ञा, धन-सम्पत्ति, महायश-महान् ख्याति, पुण्य और लोक से प्राप्त अत्यन्त प्रेम पात्रता का निश्चित ही विनाश हो जाता है । अतः मैथुन सेवन से बचना चाहिए । यदि ऐसी क्षमता नहीं है तो कम से कम परस्त्रियों से तो दूर रहना ही चाहिए ।

मणे मुच्छाकरं माया, चिंतादि-दुह-सायरं ।
तिण्हाबल्लीइ णीरं च, चत्तेज्जए परिग्गहं ॥२५॥

अन्वयार्थ- (मणे मुच्छाकरं) मनमें मूर्च्छा करने वाले, (माया) माया को बढ़ाने वाले (चिंतादि-दुह-सायरं) चिंतादि दुःखों के सागर (च) और (तिण्हाबल्लीए णीरं) तृष्णारूपी बेल को बढ़ाने के लिए जल के समान (परिग्गहं) परिग्रह को (चत्तेज्जए) छोड़ो ।

भावार्थ- मन में ममत्व, माया-चंचलता, दुष्कृत्य करने की भावना उत्पन्न करने वाले, चिंता, शोक आदि दुःखों के समुद्र के समान और लोभरूपी बेल को बढ़ाने के लिए पानी के समान परिग्रह को अवश्य ही छोड़ देना चाहिये । यदि कोई परिग्रह का पूरी तरह त्याग नहीं कर सकता तो उसे कम से कम मर्यादा तो बना ही लेना चाहिये ।

लच्छी दुहेण पत्तेदि, ड्ढिदा दुक्खेण रक्खंदे ।
तण्णासेण महादुक्खं, लच्छिं दुक्खणिहिं धिगो ॥२६॥

अन्वयार्थ- (लच्छी) लक्ष्मी (दुहेण), दुःख से (पत्तेदि) प्राप्त होती है, (दुक्खेण) दुःख से (डिदा) ठहरती है (रक्खदे), रक्षित होती है, (तण्णासेण) उसके नाश से, (महादुक्खं) महादुख होता है, [ऐसी] (दुक्खणिहिं) दुःखनिधि (लच्छिं) लक्ष्मी को (धिगो) धिक्कार है ।

**देवपूजा दया दाणं, तित्थजत्ता जवो-तवो ।
सुदं परोवगारित्तं, णरजम्मं फलड्ढगं ॥२७॥**

अन्वयार्थ- (देवपूजा दया दाणं) देव पूजा, दया, दान (तित्थजत्ता) तीर्थ यात्रा (जवो-तवो) जप-तप, (सुदं) श्रुत [तथा] (परोवगारित्तं) परोपकार की भावना [ये] (णरजम्मं), मनुष्यजन्म के (फलड्ढगं) आठ फल हैं ।

भावार्थ- जिनेन्द्र देव की पूजा करना, सभी जीवों पर दया भाव रखना, सुपात्रों को दान देना, तीर्थयात्रा करना, जप करना, तप करना, निरन्तर शास्त्राभ्यास करना और परोपकार करने की भावना रखना ये मनुष्य जन्म की सार्थकता के आठ फल हैं ।

**देवसत्थ-गुरुसेवा, संसारा णिच्चभीरुदा ।
पुण्णेण जायदे पुंसं, किरिया सोक्ख पुण्णदा ॥२८॥**

अन्वयार्थ- (देव-सत्थ-गुरुसेवा) सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की सेवा (संसारा णिच्चभीरुदा) संसार से नित्य भयभीतपना (और) (सोक्ख-पुण्णदा) सुख तथा पुण्य प्रदान करने वाली (किरिया) क्रियाएँ (पुंसं) मनुष्य को (पुण्णेण) पुण्य से (जायदे) होती है ।

भावार्थ- मनुष्य को सच्चे देवशास्त्र गुरु की सेवा, संसार से भयभीरुता, सच्चा सुख अथवा स्वर्ग-मोक्ष का सुख तथा पुण्य अर्थात् सम्यग्दर्शन प्रदान कराने वाला आचरण अत्यन्त पुण्य के योग से प्राप्त होता है ।

रञ्जं च संपदा भोगा, सुकुलं च सुरुवदा ।
पंडितं आऊ आरोगं, जिणधम्मस्स सप्फलं ॥२९॥

अन्वयार्थ- (रञ्जं) राज्य, (संपदा) संपत्ति (भोगा) भोग (सुकुलं) सुकुल, (सुरुवदा) सुरुपता, (पंडितं) पाण्डित्य (आऊ) आयु, (च) और (आरोगं) आरोग्य, [ये] (जिणधम्मस्स) जिनधर्म के (सप्फलं) अच्छे फल हैं ।

भावार्थ- राज्य, संपदा, सुकुल में जन्म, सुंदर-शरीर, शास्त्रों में पारगामिता, लम्बी आयु और निरोगता ये जिनधर्म का अच्छी तरह पालन करने से प्राप्त होने वाले श्रेष्ठ फल हैं अथवा सारी सुख-सुविधाएँ श्रेष्ठ जैनधर्म के पालन करने से प्राप्त होती हैं ।

सच्चं सोचं दया-दाणं, चागं संजम-पालणं ।
तवं परोवगारित्तं, धम्मप्पए हि लक्खणं ॥३०॥

अन्वयार्थ- (हि) वस्तुतः (सच्चं सोचं दया-दाणं-चागं-संजमपालणं) सत्य, शौच, दया, दान, त्यागशीलता, संयम का पालन करना, (तवं) तप [और] (परोवगारित्तं) परोपकारिता [ये] (धम्मप्पए) धर्मात्मा के (लक्खणं) लक्षण हैं ।

भावार्थ- सत्यवादिता, निर्लोभता, निर्मलता, दयाभावना, दानशीलता, त्यागमय जीवन, संयम का परिपालन, यथायोग्य तप और परोपकार करने की सतत् प्रवृत्ति ही धर्मात्माजनों के लक्षण हैं, न कि बाह्य वेषभूषा और आडम्बर ।

णाणादुहादु उद्धत्तुं, लोयम्हि को समत्थो हि ।
मोत्तूण जिणधम्मं च, जिणदेवो य सग्गुरु ॥३१॥

अन्वयार्थ- (लोयम्हि) लोक में, (जिणदेवो) जिनेन्द्र भगवान्, (सग्गुरु) सच्चे गुरु (च) और (जिणधम्मं) जैनधर्म को

(मोक्ष) छोड़कर (गणानुहादु उद्धृतं) विविध दुःखों से उद्धार करने के लिए (हि) वस्तुतः (को) कौन (समर्थो) समर्थ हैं ।

भावार्थ- इस संसार में वीतरागी जिनेन्द्र भगवान्, वीतरागी गुरु और जैनधर्म को छोड़कर विविध दुःखों से दुःखी होते हुए जीवों का उद्धार करने में वस्तुतः कौन समर्थ है, अर्थात् कोई नहीं ।

विगदो णंतसो काले, जीवेण भमिदो भवे ।

काणि दुक्खाणि णो पत्ता, विणा जिण्दि-सासणं ॥३२॥

अन्वयार्थ- (विगदो णंतसो काले) बीते हुए अनंतकाल में (भवे) संसार में (भमिदो) घूमते हुए (जीवेण) जीवने (जिण्दि-सासणं विणा) जिनेन्द्रशासन के बिना (काणि दुक्खाणि) किन दुःखों को (णो) नहीं (पत्ता) प्राप्त किया ।

भावार्थ- अनादि काल से इस संसार में भटकते हुए इस जीवने जिनेन्द्र भगवान के शासन को, जैनधर्म को नहीं पाकर संसार के कौन से भयंकर दुःख नहीं भोगे, अर्थात् जिनेन्द्रशासन को प्राप्त किये बिना इस जीवने सभी प्रकार के सभी दुःख भोगे हैं।

जिण्दिस्स मदं पत्ता, णिच्चं जो तम्हि चेड्ढदे ।

संपुण्णं किब्भिसं णट्ठा, सुट्ठाणं सो हि गच्छदे ॥३२॥

अन्वयार्थ- (जिण्दिस्स मदं पत्ता) जिनेन्द्र के मत को पाकर (जो) जो (तम्हि) उसमें ही (चेड्ढदे) चेष्टा करता है (सो) वह (संपुण्णं) सम्पूर्ण (किब्भिसं) पाप को (णट्ठा) नाशकर (सुट्ठाणं) सुस्थान को (हि) निश्चित ही (गच्छदे) जाता है ।

भावार्थ- जिनेन्द्र देव द्वारा कथित धर्म को प्राप्त करके जो मनुष्य उसमें कहे गए व्रत-नियमों का पालन करता है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य की प्राप्ति हेतु निरन्तर पुरुषार्थ करता है, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति करता है, वह निश्चित ही सम्पूर्ण पापों-कर्मों को नष्ट कर सर्वोत्तम स्थान मोक्ष को पाता है ।

जोव्वणं जीविदं सोक्खं, चित्तं लच्छी य चंचलं ।
णच्चा धम्मे रदो होज्ज, णिच्चलं सोक्ख-कारणं ॥३४॥

अन्वयार्थ- (जोव्वणं-जीविदं-सोक्खं चित्तं य लच्छी) यौवन, जीवन, सुख, मन और लक्ष्मी (ये) (चंचलं) चंचल है, (णच्चा) ऐसा जानकर, (णिच्चलं) निश्चल (सोक्खकारणं), सुख के कारणभूत (धम्मे) धर्म में (रदो) रत, (होज्ज) होओ ।

भावार्थ- यौवन (जवानी), लौकिक इन्द्रियजन्य सुख, मन और लक्ष्मी अर्थात् धन-संपत्ति ये सभी चंचल अर्थात् नाशवान् हैं, किन्तु एक स्वभावभूत धर्म ही निश्चल और शाश्वत् है, ऐसा जानकर ज्ञानियों को चाहिए कि वे धर्म मार्ग में ही प्रवृत्ति करें । क्योंकि यह धर्म ही सच्चे सुख का कारण है। धर्म के बिना तीन काल में भी सुख-शांति नहीं मिल सकती, अतः धर्म मार्ग में सतत् पुरुषार्थ करो ।

मत्तप्पमत्त-उम्मग्गी, लोही कोही य कामुगो ।
दुहिदो छुहिदो मूढो, भीदो धम्मं ण जाणदे ॥३५॥

अन्वयार्थ- (मत्तप्पमत्त-उम्मग्गी) मत्त-प्रमत्त, उन्मार्गी (लोही) लोभी (कोही) क्रोधी (कामुगो) कामी, (दुहिदो) दुःखी (छुहिदो) क्षुधातुर, (मूढो) मूढ, (य) और (भीदो) भयभीत (मनुष्य) (धम्मं) धर्म को (ण) नहीं (जाणदे) जानता है ।

भावार्थ- मत्त अर्थात् पागल या मतवाला, प्रमत्त अर्थात् शराब आदि के नशे से उन्मत्त, उन्मार्गी अर्थात् खोटे कार्यों में प्रवृत्ति करने वाला, अति लोभी, अति क्रोधी, कामी-विषयवासना में पड़ा हुआ, दुःखों से युक्त, मूढ अर्थात् अज्ञानी अथवा नास्तिक तथा किसी भय से अति भयभीत व्यक्ति धर्म को नहीं जानते हैं ।

दुहीए दुहणासस्स, मोक्खस्स भवभीरुणो ।
पावीए पाव-णाणस्स, जाणेज्ज धम्म-उत्तमो । ॥३६॥

अन्वयार्थ- (दुहीए दुहणाणस्स) दुःखी के दुःख का नाश करने के लिए (पावीए पाव-णाणस्स) पापी के पाप नष्ट करने के लिए (तथा) (भवभीरूणो) भवभीतों को (मोक्खस्स) मोक्ष के लिए (उत्तमो धम्म) उत्तम धर्म (जाणेञ्ज) जानो ।

भावार्थ- दुःखीजनों के दुःखों का नाश करने वाला, पापीजनों के पाप नष्ट करने वाला तथा संसार दुःखों से डरे हुए भव्य जीवों को मोक्ष प्रदान करने वाला एकमात्र उत्तम धर्म (जैन धर्म) ही है, अन्य कोई नहीं; ऐसा जानो ।

**छिण्णमूलो जहा रुक्खो, गद सीसो भडो तहा ।
धम्महीणो णरो लोए, किय-कालं सुखेज्जदे ॥३७॥**

अन्वयार्थ- (लोए) लोक में, (जहा) जैसे, (छिण्णमूलो) जड़रहित, (रुक्खो) वृक्ष, (गद सीसो भडो) शीश रहित योद्धा, (तहा) वैसे, (धम्महीणो णरो) धर्म रहित मनुष्य (किय-कालं) कितने समय तक (सुखेज्जदे) सुखी रहते हैं ।

भावार्थ- लोक में यह देखा जाता है कि जड़ रहित बड़ा भारी वृक्ष भी शीघ्र नष्ट हो जाता है, सिर रहित होने पर महासुभट योद्धा भी धराशायी हो जाता है, इसी प्रकार धर्म रहित जीवन जीने वाला मनुष्य भी कितने काल तक सुखी रहता है अर्थात् शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, अतः जीवन में धर्म का होना अनिवार्य है ।

**असक्कस्सावराहेण, किं धम्मो मलिणो हवे ।
णो मण्डूगे जडे जादा, समुद्धे पूदिगंधदा ॥३८॥**

अन्वयार्थ- (असक्कस्सावराहेण) अशक्त के अपराध से, (किं) क्या, (धम्मो) धर्म, (मलिणो) मलिन, (हवे) होता है, (समुद्धे) समुद्र में, (मण्डूगे जडे जादा) मेढ़क के मार जाने पर (पूदिगंधदा) दुर्गंधता (णो) नहीं होती ।

भावार्थ- यहाँ यह प्रश्न उपस्थित हुआ है कि यदि कमजोर व्यक्ति धर्म का पालन करते हुए कुछ दोष कर बैठता है, तो क्या धर्म मलिन हो जाता है । इसका उत्तर भी प्रस्तुत अनुष्टुप में आ गया है, कि जिस प्रकार समुद्र में मेढक के मर जाने पर पूरा समुद्र दुर्गन्धित नहीं हो जाता है, उसी प्रकार किसी अशक्त साधक से दोष होने पर पूरा धर्म मलिन नहीं हो जाता है ।

**अहिंसा सच्चमत्थेय, बंभ-खम-अलोहदं ।
भूदप्पेम हिदिच्छं च, धम्मो कल्लाण कारगो ॥३९॥**

अन्वयार्थ- (अहिंसा सच्चमत्थेयं बंभ खम अलोहदं च भूदप्पेम हिदिच्छं) अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, क्षमा, अलोभता और जीवों के प्रति प्रेम तथा हितेच्छा रूप (धम्मो) धर्म (कल्लाण कारगो) कल्याणकारक है ।

भावार्थ- अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, क्षमा-भावना, संसार के सभी जीवों के प्रति प्रेमभाव और अपने तथा अन्य जीवों के हित की निरन्तर इच्छा रखने रूप धर्म ही कल्याणकारक है ।

**जत्थ अत्थि सियावाओ, पक्खवादो ण विज्जदे ।
अहिंसाए पहाणत्तं, जिणधम्मो स वुच्चदे ॥४०॥**

अन्वयार्थ- (जत्थ सियावाओ अत्थि) जहाँ स्याद्वाद है (पक्खवादो ण विज्जदे) पक्षपात नहीं है (अहिंसाए पहाणत्तं) अहिंसा की प्रधानता है (स) वह (जिणधम्मो) जिन धर्म (वुच्चदे) कहलाता है ।

भावार्थ- जहाँ पर स्याद्वाद वाणी विद्यमान है । किसी प्रकार का एकान्तवाद, पक्षपात जहाँ नहीं है तथा जिसमें अहिंसाधर्म की प्रधानता है, वह जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित जैनधर्म कहलाता है ।

सुहं देवणिगाएसु माणुसेसु च जं सुहं ।
कम्मकखए समुव्वण्णे, तं सव्वं धम्म-संभवं ॥४१॥

अन्वयार्थ- (जं) जो (देवणिगाएसु) देवसमूह में (सुहं) सुख है (माणुसेसु) मनुष्य पर्याय में (सुहं) सुख है (च) और (कम्मकखए समुव्वण्णे) कर्मक्षय से उत्पन्न (सुख है) (तं सव्वं) वह सब (धम्म-संभवं) धर्म से उत्पन्न है ।

भावार्थ- देवताओं में जो विविध प्रकार का उत्तमोत्तम सुख है, मनुष्य पर्याय में धनपतित्व, चक्रवर्तित्व आदि का महान् सुख है तथा तपस्याकर कर्मनाश से उत्पन्न जो अनंत सुख है, वह सभी सच्चे धर्म से उत्पन्न हुआ है, ऐसा समझना चाहिए, क्योंकि बिना धर्म के सहज प्राप्त वस्तु भी नहीं प्राप्त होती है और धर्म के प्रभाव से दुर्लभ वस्तु भी प्राप्त हो जाती है ।

रावणो खयराहीसो, रामो य भूमिगोयरो ।
विजिदो सो वि रामेण, जदो धम्मो तदो जओ ॥४२॥

अन्वयार्थ- (रावणो) रावण (खयराहीसो) विद्याधरों का स्वामी था (य) और (रामो) राम (भूमिगोयरो) भूमिगोचरी थे (सो वि) वह भी (रामेण) राम के द्वारा (विजिदो) जीता गया (क्योंकि) (जदो धम्मो तदो जओ) जहाँ धर्म होता है, वहीं जय होती है ।

भावार्थ- त्रिखंडाधिपति रावण बड़े-बड़े विद्याधर राजाओं का स्वामी था, स्वयं भी महान राजनीतिज्ञ और विद्याओं से सम्पन्न था, इसके विपरीत राम वनवासी और साधारणजनों से सेवित थे, फिर भी उन्होंने रावण को पराजित कर दिया । सच ही है कि जहाँ धर्म होता है, वहीं विजय होती है । इस सूक्ति के सिद्ध होने में देर हो सकती है, पर अंधेरे नहीं ।

सद्धिड्डीणाण-चारित्तं, धम्मं जो सेवदे सुही ।
रसायणव्व सिग्घं सो, सगं-मोक्खं च पावदे ॥४३॥

अन्वयार्थ- (सद्धिटी-णाण चारित्तं) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र [रूप] (धम्मं) धर्म को (जो) जो (सुही) बुद्धिमान् (सेवदे) सेवता है (सो) वह (सिग्घं) शीघ्र ही (रसायणव्व) रसायन के समान (सग्गं-मोक्खं च) स्वर्ग और मोक्ष को (पावदे) पाता है ।

भावार्थ- जो बुद्धिमान् व्यक्ति रसायन-श्रेष्ठ औषधि के समान सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूप धर्म का निरन्तर सेवन करता है, वह शीघ्र ही जन्म-मरण रूपी रोगों का नाश कर स्वर्ग और मोक्ष के सुखों को पाता है ।

**अत्तागम-मुणिंदाणं, सद्वहणं सु-दंसणं ।
संकादि-दोस-णिक्कंतं, गुणडुं च विहूसिदं ॥४४॥**

अन्वयार्थ- (संका-मदादि) शंका, मद आदि (च) और तीन मूढता, छह अनायतन (णिक्कंतं) रहित (गुणडुं विहूसिदं) और आठ गुणों से विभूषित होकर (अत्तागम-मुणिंदाणं) आप्त-आगम-मुनीन्द्रों का (सद्वहणं) श्रद्धान करना (सु-दंसण) सम्यग्दर्शन है ।

भावार्थ- शंकादि आठ दोषों से रहित, ज्ञानादि आठ मदों से रहित और तीन मूढता तथा छह अनायतन से रहित एवं आठ अंगों से युक्त होकर सच्चे देव-शास्त्र गुरु का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है । गाथा में आया हुआ 'च' अक्षर तीन मूढता और छह अनायतन का वाचक है ।

**सम्मत्तं दुल्लहं लोए, सम्मत्तं मोक्ख-साहणं ।
णाण-चरित्तओ वीयं, मूलो धम्म-तरुस्स य ॥४५॥**

अन्वयार्थ- (लोए) लोक में, (सम्मत्तं) सम्यक्त्व (दुल्लहं) दुर्लभ है (सम्मत्तं) सम्यक्त्व (मोक्ख-साहणं) मोक्ष का साधन है (णाण-चरित्तओ वीयं) ज्ञान चारित्र का बीज है (य) और (धम्म-तरुस्स) धर्मरूपी वृक्ष का (मूलो) मूल है ।

भावार्थ- लोक में सम्यग्दर्शन का प्राप्त होना बहुत दुर्लभ है, जबकि यह सम्यग्दर्शन ही मोक्ष का साधन है; सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र का बीज है और धर्मरूपी वृक्ष की जड़ भी यह ही है, अतः सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिए।

णिगोदं णिरए थीए, तिरिए वाण-वितरे ।

णिच्चट्टाणे भमेदि णो, जीवो सम्मत्त जोगदो ॥४६॥

अन्वयार्थ- (सम्मत्त जोगदो) सम्यक्त्व के योग से (जीवो) जीव (णिगोदे णिरए थीए तिरिए वाण-वितरे) निगोद, नरक, स्त्री, तिर्यच, भवनत्रिक [तथा] (णिच्चट्टाणे) नीचपर्यायो में (णो) नहीं (भमेदि) भटकता ।

भावार्थ- सम्यग्दर्शन से संयुक्त जीव निगोद, नरक (प्रथम नरक बिना), स्त्री-पर्याय, तिर्यच, भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवों तथा अन्य और भी नीच पर्यायों-निंद्यस्थानों में उत्पन्न नहीं होता है । वह हमेशा उत्तमोत्तम पर्यायों को प्राप्त करता हुआ मोक्ष को पाता है । इसके विपरीत मिथ्यात्व से जीव संसार के अनंत दुःख पाता है ।

तच्चबोहो मणोरोहो, सेयो रायप्प-सुद्धिणो ।

विरदी विसयादो हि, तं णाणं जिणसासणे ॥४७॥

अन्वयार्थ- (हि) वस्तुतः (जिससे) (तच्चबोहो मणोरोहो) तत्त्वबोध, मनोरोध (सेयो-राय) श्रेय में राग (अप्प-सुद्धिणो) आत्म-शुद्धि (विसयादो विरदी) विषयों से विरक्ति होती है (तं) वह (जिणसासणे) जिनशासन में (णाणं) ज्ञान [कहा गया है] ।

भावार्थ- वस्तुतः जिस ज्ञान से तत्त्वों का सम्यक् बोध हो, मन का निरोध हो, कल्याण मार्ग में राग हो, कषायों की उपशांतता से आत्मा में निर्मलता प्रकट हो और विषय भोगों से विरक्ति हो उसे ही जिनेन्द्र-भगवान् के शासन में ज्ञान कहा गया है ।

णाणेण णिम्मला कित्ती, णाणेण सग्ग-इड्डिणो ।

णाणेण केवलं णाणं, मोक्ख-सुहं च पावदे ॥४८॥

अन्वयार्थ- [जीव] (णाणेण णिम्मला कित्ती) ज्ञान से निर्मल कीर्ति (णाणेण सग्ग-इड्डिणो) ज्ञान से स्वर्ग ऋद्धियाँ (णाणेण केवलं णाणं) ज्ञान से केवलज्ञान (च) और (मोक्ख-सुहं) मोक्ष-सुख (पावदे) पाता है ।

भावार्थ- संसारी भव्य जीवात्मा सम्यग्ज्ञान से विस्तृत निर्मल ख्याति को, स्वर्ग को, धन-संपत्ति, विद्या आदि ऋद्धियों को, केवलज्ञान को, और अधिक क्या कहें, विनय और विवेकपूर्वक सम्यग्ज्ञान की आराधना करने से मोक्ष सुख को भी प्राप्त कर लेता है ।

णाणेण णायदे विस्सं, सव्वं तच्चं हिदाहिदं ।

सेयासेयं च बंध वा, मोक्खं धम्मं किदाकिदं ॥४९॥

अन्वयार्थ- [ज्ञानी] (णाणेण) ज्ञान से (विस्सं) विश्व को (सव्वं-तच्चं) सभी तत्त्वों को (हिदाहिदं) हित-अहित को, (सेयासेयं) श्रेय-अश्रेय को (बंध-मोक्खं) बंध मोक्ष को (धम्मं वा) धर्म-अधर्म को, (च) और (किदाकिदं) कृत-अकृत को (णायदे) जानता है ।

भावार्थ- ज्ञानीजीव ज्ञान के माध्यम से संसार के सभी तत्त्वों को अपने हित-अहित को कल्याणकारी-अकल्याणकारी मार्ग को, बन्धन-मुक्ति को, धर्म-अधर्म को और करने तथा न करने योग्य कार्यों को अच्छी तरह जानता है और तदनुसार आचरण भी करता है ।

बहुलो किं अधीएण, णडस्सेव दुरप्पणा ।

तेणाधीदं सुदं सेट्टं, जो किरिया वि कुव्वदि ॥५०॥

अन्वयार्थ- (दुरप्पणा) दुरात्मा (णडस्सेव) नट के समान (बहुलो अधीएण) बहुत पढ़ने से (किं) क्या ? (तेणाधीदं) उसके द्वारा पढ़ा गया (सुदं) श्रुतज्ञान (सेट्ठं) श्रेष्ठ है (जो) जो (किरिया वि कुव्वदि) क्रिया भी करता है ।

भावार्थ- दुरात्मा अर्थात् मूर्ख नट के समान बहुत पढ़ने से क्या लाभ, यदि उसका आचरण नहीं किया जाता है तो । वस्तुतः उसके द्वारा अर्जित किया गया श्रुतज्ञान ही श्रेष्ठ है जो पढ़कर उसे आचरण में भी लाता है । बिना क्रिया के ज्ञान गधे के बोझ के समान है ।

**पत्तूण सम्म-णाणंच, छित्तूण मोहकम्मणो ।
सु-चारित्त समाजुत्तो, होज्ज मोक्ख-पहे ट्ठिदो ॥५१॥**

अन्वयार्थ- (सम्म-णाणंच) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान (पत्तूण) प्राप्तकर (मोहकम्मणो) मोह कर्म को (छित्तूण) छेद कर (सु-चारित्त-समाजुत्तो) सम्यक्चारित्र में अच्छी तरह जुड़कर (मोक्खपहे) मोक्षमार्ग में (ट्ठिदो) स्थित (होज्ज) होओ ।

भावार्थ- सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्राप्तकर, मोहकर्म को छेदकर अर्थात् राग-द्वेष नष्ट कर सम्यक्चारित्र से अच्छी तरह युक्त होकर मोक्ष मार्ग में स्थित होओ । इस प्रकार का रत्नत्रय ही मोक्ष का मार्ग है ।

**जहा सिद्धरसो सुद्धं, णिप्फलो भग्गहीणए ।
तहा चारित्त हीणस्स, तच्चणाणं तवो फलं ॥५२॥**

अन्वयार्थ- (जहा) जैसे (सुद्धं सिद्धरसो) शुद्ध सिद्धरस (भग्गहीणए) भाग्यहीन में, (णिप्फलो) निष्फल [रहता है] (तहा) वैसे ही (चारित्त हीणस्स) चारित्रहीन का (तच्चणाणं) तत्त्वज्ञान (तथा) (तवो फलं) तप का फल [निष्फल होता है] ।

भावार्थ- जैसे भाग्यहीन व्यक्ति के हाथ में आया हुआ लोहे को सोना बनाने में समर्थ शुद्ध सिद्धरस (एक प्रकार का रसायन)

निष्फल, बेकार हो जाता है अर्थात् उससे कुछ भी कार्य सिद्धि नहीं होती है, उसी प्रकार चारित्र-रहित व्यक्ति का बहुत-सा ज्ञान और तप का फल निष्फल होता है अथवा चारित्रहीन व्यक्ति का ज्ञान और ज्ञानहीन व्यक्ति के तप का फल निष्फल रहता है ।

**दुब्बभगो हवे णिच्चं, धण-धण्णादि-वज्जियं ।
भीय-मुत्ती दुही लोए, वदहीणो य माणुसा ॥५३॥**

अन्वयार्थ- (वदहीणो) व्रतहीन (माणुसा) मनुष्य (णिच्चं) हमेशा (दुब्बभगो) दुर्भाग्यवान् (धण-धण्णादि-वज्जियं) धन-धान्य आदि संपदा से रहित (भीय-मुत्ती) भय मूर्ति, (य) और (लोए दुही) लोक में दुःखी (हवे) होता है ।

भावार्थ- व्रत-चारित्र से रहित मनुष्य ही वस्तुतः दुर्भाग्यवान् हमेशा धन-रूपया पैसा आदि, धान्य-गेहूँ चना चाँवल आदि सम्पदा से रहित, हमेशा उरते रहने वाला - डरपोक, संसार में निरन्तर दुःखी और कष्टों को भोगने वाला होता है । यदि इस प्रकार के दुःखों से बचना है तो व्रत नियम संयम का विवेक एवं पुरुषार्थ पूर्वक पालन करो ।

**अग्गीए विहिणा तप्पं, जहा सिज्झदि कंचणं ।
तहा कम्मकलंकप्पा, सिग्घं तवेण सिज्झदे ॥५४॥**

अन्वयार्थ- (जहा) जैसे (अग्गीए विहिणा तप्पं) अग्नि में विधिपूर्वक तपाया हुआ (कंचणं) सोना (सिज्झदि) सिद्ध हो जाता है (तहा) वैसे ही (कम्मकलंकप्पा) कर्मों से कलंकित आत्मा (तवेण) तप के द्वारा (सिग्घं) शीघ्र (सिज्झदे) सिद्ध हो जाता है ।

भावार्थ- जैसे अग्नि में विधिपूर्वक तपाये जाने पर स्वर्ण-पाषाण में से सोना एकदम पृथक होकर चमचमाता हुआ प्राप्त हो जाता है, वैसे ही कर्मों से कलंकित यह संसारी आत्मा विधिपूर्वक

सम्यक् तप से अपने को तपाकर शीघ्र ही निज शुद्ध स्वभाव को प्राप्त कर लेता है ।

**तवं करेदि जो णाणी, मुत्तीए रंजिदासयो ।
सग्गो गिहंगणो तस्स, रज्ज-सोक्खस्स का कहा ॥५५॥**

अन्वयार्थ- (जो णाणी) जो ज्ञानी (मुत्तीए) मुक्ति में (रंजिदासयो) रंजित आशय वाला होकर (तवं करेदि) तप करता है (तस्स) उसके लिए (सग्गो गिहंगणो) स्वर्ग घर का आँगन ही है [तो फिर] (रज्ज-सोक्खस्स) राज्य सुख की (का कहा) क्या बात करना ।

भावार्थ- जो विवेकी सम्यग्दृष्टि जीव मुक्ति में अनुरंजित आशयवाला होता हुआ तप करता है, उसके लिए तो उत्तम स्वर्ग भी घर के आँगन के समान सहज प्राप्त होता है, फिर राज्य-सुख, ख्याति-लाभ-पूजा की क्या बात करना अर्थात् वह तो उसे अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं ।

**माणुस्सं दुल्लहं लोए, पंडित्तं अइदुल्लहं ।
जिणसासण-मच्चंतं, तवो तिल्लोए दुल्लहं ॥५६॥**

अन्वयार्थ- (लोए) लोक में (माणुस्सं) मानुषत्व (दुल्लहं) दुर्लभ है (पंडित्तं) पाण्डित्य (अइदुल्लहं) अति दुर्लभ है (जिणसासण-मच्चंतं) जिनशासन अत्यन्त दुर्लभ है [तथा] (तवो) तप (तिल्लोए) तीन लोक में (दुल्लहं) दुर्लभ है ।

भावार्थ- इस लोक में चौरासी लाख योनियों में भटकते हुए जीव को मानुषत्व अर्थात् मनुष्य पर्याय प्राप्त होना दुर्लभ है, कदाचित् मनुष्य पर्याय प्राप्त भी हो जाये तो शास्त्रों में पारंगतता रूप पाण्डित्य प्राप्त होना अति दुर्लभ है, उससे भी अत्यन्त दुर्लभ है जिनेन्द्र भगवान् का शासन अर्थात् जैनधर्म का प्राप्त होना और तीनों लोकों में सबसे दुर्लभ है सम्यक् तप का प्राप्त होना ।

सयमेवप्पजायंते, विणा जदेण देहिणो ।
अणादि-दिढ-सक्कारा, दुज्झाणं भव-कारणं ॥५७॥

अन्वयार्थ- (देहिणो) शरीरधारियों को (विणा जदेण) बिना प्रयत्न के (अणादि दिढ सक्कारा) अनादिकालीन दृढ संस्कारों के बल से (भव-कारणं) संसार के कारणभूत (दुज्झाणं) दुर्ध्यान (सयमेवप्पजायंते) स्वयं ही उत्पन्न हो जाते हैं ।

भावार्थ- संसारी जीवों को अनादिकालीन दृढ कुसंस्कारों के प्रभाव से बिना किसी प्रयत्न के संसार सागर में भटकाने वाले आर्त-रौद्र ध्यान रूप दुर्ध्यान-खोटे ध्यान स्वयं ही उत्पन्न होते रहते हैं । जब तक इन खोटे ध्यानों की परम्परा चलती रहेगी तब तक जीव अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकता ।

अविक्खित्तं जदा ज्ञादा, स-तच्चाहिमुहं हवे ।
ज्ञाणीणं ज्ञाण-णिव्विग्घं, अप्पसिद्धीए वुच्चदे ॥५८॥

अन्वयार्थ- (जदा) जब (ज्ञादा) ध्याता (अविक्खित्तं) अविक्षिप्त होकर (स-तच्चाहिमुहं) स्वतत्त्वाभिमुख (हवे) होता है [तब] (ज्ञाणीणं) ध्यानी का (णिव्विग्घं) निर्विघ्न (ज्ञाण) ध्यान (अप्पसिद्धीए) आत्मसिद्धि के लिए (वुच्चदे) कहा गया है ।

भावार्थ- जब ध्याता-ध्यान करने वाला मन-वचन-काय से अविक्षिप्त अर्थात् अचंचल होकर निज आत्म-तत्त्व के अभिमुख होता है, तब उस ध्यानी का वह निर्विघ्न अर्थात् निश्चल धर्म-शुक्ल ध्यान आत्मसिद्धि अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति कराने वाला कहा गया है ।

दाणं जे ण पयच्छंति, णिग्गंथेसु य गच्छए ।
जाल व्व हि गिहं तेसिं, संसारद्धे णिमज्जदे ॥५९॥

अन्वयार्थ- (णिग्गंथेसु) निर्ग्रन्थों में (य) और (गच्छए) गच्छ में (जे) जो (दाणं) दान (ण-पयच्छंति) नहीं देते हैं (हि)

वस्तुतः (तेसिं गिहं) उनका घर (जाल व्व) जाल के समान है, [वे] (संसारद्धे) संसाररूपी सागर में (णिमज्जदे) डूबते हैं ।

भावार्थ- जो गृहस्थ निर्ग्रन्थ वीतरागी मुनियों को तथा चतुर्विध संघ को औषधि, शास्त्र अभय और आहार दान अथवा यथायोग्य दान नहीं देते, उनका घर जाल के समान है । ऐसे लोग मरण कर संसाररूपी समुद्र में डूबते हैं । जिस प्रकार जाल में फँसा हुआ पक्षी अपना हित नहीं कर पाता अपितु तड़प-तड़प कर संक्लेश भावों से मरकर संसार में भटकता है, उसी प्रकार लोभी गृहस्थ की दशा होती है ।

**कोह-माणग्गहं जुत्तो, माया-लोह-विडंबिदो ।
स-हिदं णेव जाणादि, सुधम्मं जिण भासिदं ॥६०॥**

अन्वयार्थ- (कोह-माणग्गहं जुत्तो) क्रोध-मान ग्रहों से युक्त (माया लोह विडंबिदो) माया-लोभ से विडंबित [जीव] (जिण भासिदं सुधम्मं) जिन-भाषित सुधर्म को [और] (स-हिदं) स्वहित को (णेव) नहीं (जाणादि) जानता है ।

भावार्थ- क्रोधकषाय व मानकषाय रूपी खोटे-ग्रहों से ग्रसित तथा मायाकषाय व लोभकषाय (तृष्णा) रूप भाव से विडंबना को प्राप्त जीव जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कहे गये जैनतत्त्व को अथवा श्रेष्ठतम जैनधर्म को तथा अपनी आत्मा के हित को नहीं जानते हैं । जो अपनी आत्मा को ही नहीं जानते हैं, वे अपना हित कैसे कर सकते हैं अर्थात् कैसे भी नहीं कर सकते । जिन जीवों को अपनी आत्मा का हित करना है, उन्हें चाहिए कि वे जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित सुधर्म-सुतत्त्व को अपनाकर अपना हित-अहित जानें; पश्चात् हितरूप कार्यों में प्रवृत्तिकर आत्मा का कल्याण करें ।



लोग-णीदी

सिद्धमद्व-गुणोवेदं, णिव्वियारं णिरंजणं ।
तं सरिसं णियप्पाणं, जो जाणेदि स पंडिदो ॥१॥

अन्वयार्थ- (अद्व-गुणोवेदं) आठ-गुणों को प्राप्त (णिव्वियारं) निर्विकार (णिरंजणं) निरंजन (सिद्धं) सिद्ध हैं (तं सरिसं) उनके समान (णियप्पाणं) निज आत्मा को (जो) जो मनुष्य (जाणेदि) जानता है (स) वह (पंडिदो) पंडित है ।

भावार्थ- आठ कर्मों के नाश से सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवागाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व इन आठ गुणों को प्राप्त, निर्विकार अर्थात् पर द्रव्य जनित किसी भी विकृति से रहित, निरंजन अर्थात् ज्ञानावरणादि, राग-द्वेषादि कर्मरूप अंजन से रहित सिद्ध भगवान के समान जो अपनी आत्मा को जानता है, वेदन करता है, वह पंडित है ।

लिंगीणं च गुरुं इत्थिं, दुज्जणं णिवइं तथा ।
मुखं बालं च सप्पं च, कोहएंति णो पंडिदा ॥२॥

अन्वयार्थ- (लिंगीणं) लिंगधारी (गुरुं) गुरु (इत्थिं) स्त्री (दुज्जणं) दुर्जन (णिवइं) राजा (तथा) तथा राज-सेवक (मुखं) मूर्ख (बालं) बालक (च) और (सप्पं) सर्प को (पंडिदा) बुद्धिमान लोग (णो कोहएंति) कुपित नहीं करते हैं ।

भावार्थ- समझदार लोग भेषधारी साधु, गुरु, स्त्री, दुर्जन, राजा, 'तथा' शब्द से तथा राज-सेवक, मूर्ख, बालक और सर्प को क्रोधित नहीं करते हैं, अर्थात् इनके सम्बन्ध में कोई भी ऐसी चेष्टा नहीं करते जिससे कि ये कुपित हो जायें, क्योंकि इनके रुष्ट हो

जाने पर कई प्रकार की परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है । कभी-कभी तो प्राण जाने का भी खतरा रहता है ।

**णरत्तं सुउले जम्मं, लच्छी बुद्धी सुशीलदा ।
विवेगेणं विणा सव्वं, गुण दोस व्व णिप्फलं ॥३॥**

अन्वयार्थ- (णरत्तं) मानुषत्व (सुउले जम्मं) सुकुल में जन्म (लच्छी) लक्ष्मी (बुद्धी) बुद्धि (सुशीलदा) सुशीलता [आदि] (विवेगेणं विणा) विवेक के बिना (सव्वं) सभी (गुण) गुण (दोस व्व) दोषों के समान (णिप्फलं) निष्फल हैं ।

भावार्थ- मनुष्यता-दयालुता, अच्छे कुल में जन्म, बहुत सारी धन-सम्पत्ति, बुद्धि-किताबी ज्ञान और सुशीलता आदि सभी गुण विवेक अर्थात् सोच-विचार की अच्छी क्षमता के बिना निष्फल दोषों के समान ही निष्फल हैं ।

**णट्टं गदं अपत्तव्वं, णो हि सोचंति पंडिदा ।
पंडिदाणं च मुख्खाणं, विसेसो मज्झ दोण्ह वि ॥४॥**

अन्वयार्थ- (णट्टं) नष्ट हुए (गदं) गये हुए [तथा] (अपत्तव्वं) अप्राप्ति के योग्य [पदार्थ के विषय में] (पंडिदा) बुद्धिमान् जन (णो सोचंति) शोक नहीं करते (हि) वस्तुतः (पंडिदाणं च मुख्खाणं) पंडित और मूर्ख (दोण्ह-मज्झ) दोनों के बीच (वि) यही (विसेसो) विशेषता है ।

भावार्थ- नष्ट हुए, गये हुए और अप्राप्ति के योग्य पदार्थों के विषय में विवेकीजन शोक नहीं करते, अधिक विचार नहीं करते अपितु जिससे वर्तमान जीवन और भविष्य सुखमय हो ऐसा यत्न करते हैं; इसके विपरीत अज्ञानीजन नष्ट हुए, मरे हुए, चोरी गए हुए और अति-दुर्लभ भौतिक पदार्थों के सम्बन्ध में ही विचार करते हुए आर्त-रौद्र ध्यान करते रहते हैं । वस्तुतः पंडित और मूर्ख में यही अन्तर है ।

तवे सुदे धिदिज्ज्ञाणे, विवेगे संजमे हि य ।

जे वुड्ढा सुट्ठु ते वुड्ढा, णो पुणो सेड-केसेहि ॥५॥

अन्वयार्थ- (तवे सुदे धिदि-ज्ञाणे विवेगे संजमे य) तप, श्रुत, धृति, ध्यान, विवेक और संयम में (जे) जो (सट्ठु) अच्छी तरह से (वुड्ढा) वृद्ध हैं (हि) वस्तुतः (ते वुड्ढा) वे ही वृद्ध हैं (णो पुणो सेड-केसेहि) न कि सफेद बालों से ।

भावार्थ- जो तप, श्रुत-ज्ञान, धृति-धैर्य, ध्यान, विवेक-शीलता, संयमसाधना आदि अनेक गुणों से युक्त हैं, वस्तुतः वे ही वृद्ध हैं; चाहे उनकी उम्र कितनी ही क्यों न ही । गुणों से वृद्ध ही वृद्ध है, न कि केवल सफेद बालों युक्त वृद्ध व्यक्ति ।

धम्मत्थ-काम-मोक्खं च, उच्चकित्तिं दएज्ज जा ।

सा विज्जा जेण णाधीदा, तस्स जम्मो हि णिप्फलो ॥६॥

अन्वयार्थ- (जा) जो (धम्मत्थ-काम-मोक्खं) धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष (च) और (उच्चकित्तिं) उच्चकीर्ति को (दएज्ज) देती हैं (सा विज्जा) वह विद्या (जेण) जिसने (ण अधीदा) नहीं पढ़ी (हि) वस्तुतः (तस्स) उसका (जम्मो) जन्म (णिप्फलो) निष्फल है ।

भावार्थ- जो धार्मिक-पारमार्थिक विद्या (ज्ञान) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तथा उत्तमकीर्ति को प्रदान करती है, वह विद्या जिसने नहीं पढ़ी अर्थात् जिसने धार्मिक जैन-शास्त्रों का अच्छी तरह अध्ययन नहीं किया उसका जीवन ही निष्फल हो गया ऐसा समझो ।

अदायं पुरिसं चागी, धणं चत्तूण गच्छदे ।

दायारं किविणं मण्णे, पर-भवे ण मुंचदे ॥७॥

अन्वयार्थ- [मैं] (अदायं पुरिसं) अदाता पुरुष को (चागी) त्यागी (मण्णे) मानता हूँ [क्योंकि वह] (धणं चत्तूण गच्छदे) धन छोड़कर के चला जाता है [तथा] (दायारं किविणं मण्णे) दाता को

कृपण मानता हूँ [क्योंकि वह] (पर-भवे ण मुंचदि) पर-भव में नहीं छोड़ता है ।

भावार्थ- मैं अदाता-कंजूस मनुष्य को त्यागी मानता हूँ, क्योंकि जब वह मरता है तो सब कुछ यहीं का यहीं छोड़ जाता है तथा दाता अर्थात् निरन्तर दान दे-देकर अगले भव में महान्-वैभव, धन-सम्पदा को प्राप्त करने वाले दाता को कंजूस मानता हूँ।

**कीडेहिं संचिदं धण्ण, मक्खीए संचिदं महू ।
किविणोवज्जिदा लच्छी, परेहिं हि विभुज्जदे ॥८॥**

अन्वयार्थ- (कीडेहिं संचिदं धण्ण) कीड़ों के द्वारा संचित धान्य (मक्खीए संचिदं महू) मक्खियों द्वारा संचित मधु [और] (किविणोवज्जिदा लच्छी) कृपण द्वारा उपार्जित लक्ष्मी (हि) निश्चय से (परेहिं) दूसरों के द्वारा ही (विभुज्जदे) भोगी जाती है ।

भावार्थ- कीड़े-मकोड़ों द्वारा अपने-अपने स्थान में एकत्रित किया हुआ गेहूँ-चावल आदि धान्य, मधु-मक्खियों द्वारा फूलों से लाकर अपने छत्ते में एकत्रित की गई मधू और कंजूस व्यक्ति द्वारा एकत्रित धन वास्तव में दूसरों के द्वारा ही उपयोग किया जाता है । ऐसे कुछ ही बुद्धिमान होते हैं जो अपने द्वारा कमाएँ हुए धन को दान में लगाकर अपना यह भव और पर-भव सुधार लेते हैं ।

**दाएज्ज वयणं सुत्ता, देहट्टा पंच-देवदा ।
णस्सेंति तं खणे कित्ती, धिदी सिरी हिरी य धी ॥९॥**

अन्वयार्थ- (दाएज्ज) दीजिए [यह] (वयणं सुत्ता) वचन सुनकर (कित्ती, धिदी सिरी हिरी य धी) कीर्ति, धृति, लक्ष्मी, लज्जा और बुद्धि [ये] (देहट्टा पंच-देवदा) देहस्थित पाँच देवता (तं खणे) उसी क्षण (णस्सेंति) नष्ट हो जाते हैं ।

भावार्थ- किसी से कोई वस्तु माँगते समय जब 'दीजिए-दो' यह वचन कहा जाता है तब शरीर में आत्मा के आश्रय से रहने

वाले कीर्ति-ख्याति, धृति-धैर्य, लक्ष्मी-श्रीमंतता, ही-लज्जा और धी-बुद्धि ये पाँच देवता (गुण) उसी समय नष्ट हो जाते हैं । अतः किसी से कभी कुछ नहीं माँगना चाहिए ।

**जीवंतो वि जडो पंच, भासंते सयलागमे ।
दालिदो बाहिओ मूढो, पवासी णिच्च-सेवगो ॥१०॥**

अन्वयार्थ- (दालिदो बाहिओ मूढो पवासी णिच्चसेवगो) दरिद्र, व्याधि-युक्त, मूर्ख, प्रवासी, नित्यसेवक [ये] (पंच) पाँच (सयलागमे) सम्पूर्ण शास्त्रों में (जीवंतो वि जडो) जीते हुए भी मृत (भासंते) कहे गये हैं ।

भावार्थ- दरिद्र-धनहीन, हमेशा बीमार रहने वाला, अत्यन्त मंदबुद्धि वाला अथवा पागल, प्रवासी-विदेश में रहने वाला तथा हमेशा दूसरों की सेवा करने वाला ये पाँच प्रकार के मनुष्य जीवित रहते हुए भी मरे के समान कहे गये हैं ।

**वेरो वेस्साणरो बाही, वादो विसणलक्खणो ।
महाणत्थस्स जायंते, वकारा पंच वज्जिदा ॥११॥**

अन्वयार्थ- (वेरो वेस्सारणो बाही, वादो विसणलक्खणो) वैर, वैश्वानर, व्याधि, वाद, व्यसन-शीलता (महाणत्थस्स जायंते) महा अनर्थ के लिए होते हैं [इसलिए] (वकारा पंच वज्जिदा) ये पाँच वकार छोड़ देना चाहिए ।

भावार्थ- बैर-द्वेष भाव, वैश्वानर-अग्नि, बीमारी, वाद-विवाद और व्यसनों में तल्लीनता ये पाँच वकार महा-अनर्थ की जड़ हैं, अतः विवेक-विचार पूर्वक इनका त्याग कर देना चाहिए । इन पाँचों में से एक भी मनुष्य के जीवन को नष्ट कर डालता है । ये पाँचों 'व' अक्षर से प्रारम्भ होते हैं, इसलिए इन्हें पंच-वकार कहा गया है ।

जामादा जढरं जाया, जादवेदा जलासओ ।
पूरिदा णेव पूरंते, जकारा पंच दुब्भरा ॥१२॥

अन्वयार्थ- (जामादा जढरं जाया जादवेदा जलासओ) दामाद, जठर, पुत्री, अग्नि, जलाशय (पूरिदा णेव पूरंते) भरने पर भी नहीं भरते [ये] (पंच जकारा दुब्भरा) पाँच जकार दुर्भर हैं ।

भावार्थ- दामाद-जमाई, जठर-पेट, जाया-पुत्री अथवा संतान, जातवेदस्-अग्नि अथवा तृष्णा और जलाशय-समुद्र अथवा तालाब ये पाँच 'जकार' दुर्भर हैं । इन्हें कितना ही भरते जाओ पर ये कभी पूर्ण रूप से नहीं भरे जा सकते । 'ज' अक्षर से शुरू होने के कारण इन्हें 'पंच-जकार' कहा गया है ।

सच्चं सोजण्ण-संतोसं, समदा साहु-संगदी ।
सकारा पंच वट्टंते, दुग्गदिं णेव एदि सो ॥१३॥

अन्वयार्थ- (सच्चं सोजण्ण-संतोसं, समदा साहु-संगदी) सत्य, सौजन्य, सन्तोष, समता, साधु-संगति [जो इन] (पंच सकारा वट्टंते) पाँच सकारो में वर्तता है (सो) वह (दुग्गदिं) दुर्गति को (णेव एदि) प्राप्त नहीं करता है ।

भावार्थ- सत्य-सत्यवादिता, सौजन्य-मिलनसारिता, संतोष-संतुष्टता और साधुजनों की संगति करना इन पाँच सकारों में जो प्रवृत्ति करता रहता है वह दुर्गति को नहीं पाता । 'स' अक्षर से प्रारम्भ होने के कारण ये 'पंच-सकार' कहलाते हैं ।

दाणं दया दमिक्खाणं, दंसणं देवपूयणं ।
दकारा जस्स विज्जंते, गच्छंते ते ण दुग्गदिं ॥१४॥

अन्वयार्थ- (दाणं दया दमिक्खाणं दंसणं देवपूयणं) दान, दया, इच्छाओं का दमन, दर्शन, देवपूजन (दकारा जस्स विज्जंते) [ये] दकार जिसके पास रहते हैं, (ते) वे (दुग्गदिं) दुर्गति को (ण) नहीं (गच्छंते) जाते हैं ।

भावार्थ- सुपात्रों में दान देना, जीवों पर दया करना, इच्छाओं का दमन करना, दर्शन तथा जिनेन्द्र-देव की पूजन करना । ये पाँच दकार जिन मनुष्यों में विद्यमान रहते हैं, वे दुर्गति-खोटी गति में नहीं जाते हैं । 'दर्शन' शब्द के यहाँ दो अर्थ किए हैं- १. सच्चे-देव का प्रतिदिन दर्शन करना, २. सम्यग्दर्शन प्राप्त होना या प्राप्त करने का प्रयास करना ।

मज्जं मंसं महुं मूलं, मक्खणं-माण-मूढदं ।

णिच्चं भव्वाण चत्तव्वं, मकारा सत्त दुक्खदं ॥१५॥

अन्वयार्थ- (मज्जं मंसं महुं मूलं मक्खणं-माण-मूढदं) मद्य, मांस, मधु, कंदमूल, मक्खन, मान, मूढता (दुक्खदं) दुख देनेवाले (सत्त मकारा) सप्त मकार (णिच्चं) हमेशा (भव्वाण) भव्यों के द्वारा (चत्तव्वं) त्यागने योग्य हैं ।

भावार्थ- मद्य-शराब, मांस-जीवों का कलेवर, मधु-शहद, मूल-कंदमूल (आलू, गाजर, मूली आदि) । मक्खन-नवनीत, मान-अभिमान और मूढता अर्थात् कुदेव-शास्त्र-गुरु के प्रति श्रद्धा ये सात मकार अति-दुखदायी हैं; अतः आत्म हित की इच्छा करने वाले भव्य जीवों के द्वारा त्यागने-छोड़ने योग्य है ।

परसेवा य दालिदं, चिंता-सोगादि-संभवं ।

तहावमाणदो दुक्खं, णराणं णारगायदे ॥१६॥

अन्वयार्थ- (परसेवा) दूसरों की सेवा (दालिदं) दरिद्रता (य) और (चिंता-सोगादि-संभवं) चिंता-शोकादि से उत्पन्न (तहा अवमाणदो) तथा अपमान से उत्पन्न (दुक्खं) दुःख (णराणं) मनुष्यों को (णारगायदे) नारकियों जैसा कर देता है ।

भावार्थ- निरन्तर दूसरों की सेवा-चाकरी करने, दरिद्रता-अत्यन्त गरीबी, चिन्ता-तनाव, शोक आदि से तथा अपमान से

उत्पन्न दुःख (भीतरी कष्ट) मनुष्यों को नारकियों के समान दुःखों का अनुभव करा देता है । अर्थात् उपरोक्त दुःख मनुष्य को महाकष्टकारी हैं ।

**एकमेव वरं पुत्रो, जो सम्मग्न परायणो ।
विचार-कुसलो धीरो, मादुं पिदुं सुहृत्पदो ॥१७॥**

अन्वयार्थ- (जो सम्मग्न परायणो) जो सन्मार्ग में लगा हुआ (विचार-कुसलो) विचार-कुशल (धीरो) धीर [तथा] (मादुं पिदुं सुहृत्पदो) माता-पिता को सुखप्रद हो [ऐसा] (एकं पुत्रो एव) एक पुत्र ही (वरं) श्रेष्ठ है ।

भावार्थ- जो अच्छे आचरण वाला, सच्चे धर्म (व्रत-नियमों) का पालन करने वाला, विचार करने में कुशल, धैर्यवान्, शूरवीर, साहसी, माता-पिता को सुख-प्रदान करने वाला तथा उनकी आज्ञानुसार चलने वाला हो ऐसा एक पुत्र ही अच्छा है ।

**सोग-सत्तु-भयत्ताणं, पीदी-विस्सास-भायणं ।
गुणाणं जुंजदे णिच्चं, सेट्ट-मित्तस्स लक्खणं ॥१८॥**

अन्वयार्थ- (सोग-सत्तु-भयत्ताणं) शोक, शत्रु तथा भय से रक्षा करना, (पीदी-विस्सास-भायणं) प्रेम, विश्वास का पात्र होना (गुणाणं जुंजदे णिच्चं) हमेशा गुणों में जोड़ना [ये] (सेट्ट-मित्तस्स लक्खणं) श्रेष्ठ मित्र के लक्षण हैं ।

भावार्थ- शोक के आने पर, शत्रुओं से सामना होने पर अथवा अन्य भयों के प्राप्त होने पर साथ रहने वाला, सुरक्षा करने वाला, प्रेम और विश्वास करने योग्य तथा हमेशा अपने मित्र को गुणों में-धर्म मार्ग में जोड़ने की इच्छा रखने वाला ही सच्चा मित्र है । ये ही सच्चे मित्र के लक्षण हैं । जो ऐसा हो उसके साथ ही मित्रता करनी चाहिए ।

दूरत्थो वि ण दूरत्थो, जो जस्स हियए द्विदो ।
हिदयादो य णिक्कंतो, समीवत्थो वि दूरगो ॥१९॥

अन्वयार्थ- (जो जस्स हियए द्विदो) जो जिसके हृदय में स्थित है वह (दूरत्थो वि) दूर होता हुआ भी (ण दूरत्थो) दूर स्थित नहीं है (य) और (हिदयादो) हृदय से (णिक्कंतो) निकला हुआ (समीवत्थो वि दूरगो) पास रहता हुआ भी दूर है ।

भावार्थ- जो व्यक्ति, वस्तु, भगवान् या अन्य कोई पदार्थ जिसके हृदय में बसा हुआ है, वह कितना ही दूर क्यों न हो पर वस्तुतः दूर नहीं है, क्योंकि उसमें मन लगा हुआ है; इसके विपरीत जो व्यक्ति, वस्तु या अन्य पदार्थ हृदय में नहीं है अथवा किसी कारणवश हृदय से निकल गया है, वह पास होता हुआ भी दूर है क्योंकि उसके प्रति कोई लगाव नहीं है ।

जदि इच्छेसि संबंधो, णिम्मलो वाग-वादो णो ।
संबंधो धण-धणस्स, परोक्खे दार दंसणं ॥२०॥

अन्वयार्थ- (जदि) यदि (णिम्मलो) निर्मल (संबंधो) सम्बन्ध (इच्छेसि) चाहते हो [तो] (वाग-वादं) वचन-विवाद (धण-धणस्स संबंधो) धन-धान्य का सम्बन्ध [तथा] (परोक्खे दार दंसणं) स्त्री का परोक्ष में दर्शन (णो) नहीं करो ।

भावार्थ- किसी भी व्यक्ति से आप यदि अच्छे सम्बन्ध बनाना चाहते हैं तो इन तीन बातों का अवश्य ध्यान रखो- १. उससे किसी भी विषय पर वाद-विवाद मत करो २. धन-रूपया-सम्पत्ति, धान्य अनाज आदि का लेन-देन मत रखो और ३. उसकी स्त्री को खोटी नजर से मत देखो तथा एकान्त में बात मत करो ।

णोपायो विज्जदे कोई, णो भूदो णो भविस्सदे ।
जेण कालो णिवज्जेज्ज, जीवाणं हंतमाण जो ॥२१॥

अन्वयार्थ- (जो जीवाणं हंतमाण) जो काल जीवों को मारता हुआ प्रवर्त रहा है (जेण) जिससे [उसका] (णिवज्जे) निवारण हो [ऐसा] (कोई उपायो ण विज्जे) कोई उपाय न है (णो भूदो) न भूत में था [और] (णो भविस्सदे) न भविष्य में रहेगा ।

भावार्थ- जो यमराज अथवा मृत्युरूपी काल (शत्रु, समय) जीवों को मारता हुआ प्रवर्त रहा है, वह अनादि काल से ऐसा कर रहा है, किन्तु आज तक कोई भी ऐसा उपाय संसार में हाथ नहीं लगा जिसके द्वारा उसे रोका जा सके । न तो भूतकाल में उसका निवारण करना सम्भव था, न वर्तमान में है और न भविष्य में रहेगा । काल का निवारण तो असम्भव है, पर यदि जीव अपनी आत्मा को विशुद्ध कर लें तो वह जन्म-मरण के फन्दे से जरूर छूट सकता है ।

णो मादा णो पिदा बंधू, णो पुत्ता ण य भारिया ।

मिच्चुकाले पजादस्स, गच्छंति पुण्ण पाव हि ॥२२॥

अन्वयार्थ- (मिच्चुकाले पजादस्स) मृत्युकाल के आने पर (पुण्ण-पाव हि) पुण्य पाप ही (गच्छंति) [साथ] जाते हैं (णो मादा णो पिदा बंधू णो पुत्ता ण य भारिया) न माता, न पिता, न बन्धुजन, न पुत्र और न पत्नि ।

भावार्थ- मरणकाल के आने पर अर्थात् मृत्यु होने पर माता-पिता, भाई-बन्धु, पुत्र-पुत्रियाँ, पत्नि और रिश्तेदार कोई भी साथ नहीं जाते हैं; वस्तुतः एक स्वयं के द्वारा अर्जित किये पुण्य-कर्म और पाप-कर्म ही साथ जाते हैं, अन्य कुछ भी नहीं ।

जत्थ कामत्थ-उज्जोओ, किदो वि णिप्फलो हवे ।

तत्थ धम्म-समारंभो, संकप्पो णो हि णिप्फलो ॥२३॥

अन्वयार्थ- (जत्थ) जहाँ (कामत्थ-उज्जोओ) काम-अर्थ का उद्योग (किदो वि) किया हुआ भी (णिप्फलो) निष्फल (हवे)

हो जाता है (तत्थ) वहाँ (धम्म-समारंभो) धर्म का समारम्भ (संकप्पो) संकल्प (हि) निश्चयतः (णिप्फलो णो) निष्फल नहीं होता है ।

भावार्थ- लोक में यह आए दिन देखा जाता है कि काम अर्थात् विषय-वासनाओं तथा धन प्राप्ति के सन्दर्भ में किया गया महान् उद्योग भी मृत्यु हो जाने से, शरीर रोगी होने से, घर नष्ट हो जाने से, छापा पड़ जाने से निष्फल हो जाता है; किन्तु किए गए धर्म-कार्य और व्रत-नियमों के संकल्प कभी भी निष्फल नहीं होते । उनका शुभ फल कालान्तर में अवश्य ही प्राप्त होता है ।

**अणिच्चाणिं सरीराणिं, विहवो णेव सस्सदो ।
णिच्चं सण्णिहिदो मिच्चू, कादव्वो धम्म-संगहो ॥२४॥**

अन्वयार्थ- (अणिच्चाणिं सरीराणिं) [ये] शरीर अनित्य हैं (विहवो सस्सदो णेव) वैभव शाश्वत नहीं है (मिच्चू णिच्चं सण्णिहिदो) मृत्यु हमेशा पीछे लगी हुई है, [इसलिए] (धम्म-संगहो) धर्म-संग्रह (कादव्वो) करना चाहिए ।

भावार्थ- ये दिखने वाले सुन्दर शरीर नष्ट होने वाले हैं, धन-सम्पत्ति, घर-परिवार और विशाल वैभव ये भी शाश्वत् नहीं हैं तथा जन्म से ही मृत्यु हमेशा पीछे लगी हुई है, इसलिए बुद्धिमान् जनों को चाहिए कि वे धर्म का संग्रह करें । सच्ची-धार्मिक क्रियाओं के साथ आत्मरूप की पहचान भी करें ।

**उज्जमो साहसं धीरं, बलं बुद्धिं परक्कमं ।
छच्चेदे जस्स विज्जंते, तस्स देवो वि किंकरो ॥२५॥**

अन्वयार्थ- (उज्जमो साहसं धीरं बलं बुद्धिं परक्कमं) उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि, पराक्रम (जस्स छच्चेदे विज्जंते) जिसके पास ये छह रहते हैं (तस्स देवो वि किंकरो) उसके देव भी किंकर होते हैं ।

भावार्थ- जिस श्रेष्ठ पुण्यवान् मनुष्य में उद्यम-परिश्रम, साहस-निडरता, धैर्य-धीरता, बल-ताकत, बुद्धि-विवेकज्ञान और पराक्रम-कार्य के प्रति सन्नद्धता, ये छह गुण (विशेषताएँ) पाये जाते हैं, उसके साधारण मनुष्य तो ठीक देव भी किंकर-नौकर बन जाते हैं, सेवा और सहायता करने लग जाते हैं ।

**उज्जमेण हि सिज्जंति कज्जाणि णो मणेण हि ।
उज्जमेण दु कीडा वि, भिंदंते महदं दुमं ॥२६॥**

अन्वयार्थ- (उज्जमेण हि कज्जाणि सिज्जंति) कार्य उद्यम से ही सिद्ध होते हैं (णो मणेण हि) न कि केवल मन से (उज्जमेण दु कीडा वि) उद्यम से कीड़े भी (महदं दुमं) बड़े-वृक्ष को (भिंदंते) भेद डालते हैं ।

भावार्थ- वस्तुतः सभी कार्य योग्य पुरुषार्थ से ही सिद्ध होते हैं, केवल मन में विचार करते रहने से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता है । निरन्तर उद्यम कर छोटे-छोटे कीड़े भी बड़े भारी वृक्ष को नष्ट कर डालते हैं । पुरुषार्थी व्यक्ति ही धन, सम्मान और ख्याति पाता है, किन्तु निरुद्योगी व्यक्ति केवल मृत्यु ही पाता है और कुछ नहीं ।

**सरीर-णिरवेक्खस्स, दक्खस्स ववसायिणो ।
पुण्णजुत्तस्स धीरस्स, णत्थि किंचि वि दुक्करं ॥२७॥**

अन्वयार्थ- (सरीर-णिरवेक्खस्स) शरीर से निरपेक्ष (दक्खस्स) दक्ष (ववसायिणो) उद्योग-शील (पुण्णजुत्तस्स) पुण्य-युक्त [और] (धीरस्स) धीर व्यक्ति के लिए (किंचि वि) कुछ भी (दुक्करं) दुष्कृत नहीं है ।

भावार्थ- जो शरीर से निरपेक्ष (शरीर के नष्ट होने की भी चिन्ता नहीं करता), दक्ष अर्थात् अत्यन्त चतुर, निरन्तर उद्यम-शील, पुण्य-कर्म से युक्त तथा धैर्य-गुण से युक्त हैं, उसके लिए

कोई भी कार्य असम्भव नहीं है । उच्च-पद, अकूत धन-सम्पत्ति और ख्याति-लाभ की इच्छा रखने वाले में ये गुण अवश्य होने चाहिए ।

**उज्जोगं कलहं कण्डुं, जूयं मज्जं परत्थियं ।
आहारं मेहुणं णिद्धं, सेयमाणं च वड्डदे ॥२८॥**

अन्वयार्थ- (उज्जोगं कलहं कण्डुं जूयं मज्जं परत्थियं आहारं मेहुणं च णिद्धं) उद्योग, कलह, खुजली, जुआ, शराब-सेवन, पर-स्त्री सेवन, आहार, मैथुन और निद्रा (सेयमाणं) सेवन करते हुए (वड्डदे) बढ़ते हैं ।

भावार्थ- उद्योग-व्यापार, कलह-झगड़ा, खाज-खुजली, जुआ-लाटरी, अर्थात् कोई भी हार-जीत का खेल, शराब अथवा कोई भी नशीली वस्तु, पर-स्त्री का सम्बन्ध, भोजन, मैथुन और निद्रा इनका जितना सेवन करते जाओ, उतनी ही इनके सेवन की इच्छा बढ़ती जाती है, घटती नहीं है ।

**देवणिंदी दलिद्धो हि, गुरु-णिंदी य पादगी ।
सामी-णिंदी हवे कुट्टी, गोद-णिंदी कुलक्खयी ॥२९॥**

अन्वयार्थ- (देवणिंदी) देव-निन्दक (दलिद्धो) दरिद्र (गुरु-णिंदी) गुरु-निन्दक (पादगी) पातकी (सामी-णिंदी) स्वामी-निन्दक (कुट्टी) कुष्ठी (य) और (गोद-णिंदी) गोत्र-निन्दक (कुलक्खयी) कुल-क्षयी (हि) निश्चित ही (हवे) होता है ।

भावार्थ- सच्चे देव की निन्दा अथवा साधारण देव की निन्दा करने वाला दरिद्री-निर्धन, सच्चे गुरु अथवा शिक्षा गुरु की निन्दा करने वाला पातकी-पापी, स्वामी अथवा अत्यन्त निकटवर्ती व्यक्ति की निन्दा करने वाला कुष्ठी-कोड़ी तथा अपनी जाति, धर्म या गोत्र की निन्दा करने वाला कुल का नाश करने वाला निश्चित ही होता है ।

स-हाव-सुचिदा मित्ती, चागो सच्चं अणालसं ।
सुसीलं सूरदा एदे, गुणा संपत्ति हेदुओ ॥३०॥

अन्वयार्थ- (स-हाव-सुचिदा) स्वभाव की शुचिता, (मित्ती) मैत्री-भाव (चागो सच्चं अणालसं सुसीलं सूरदा) त्याग, सत्य, अनालस्य, सुशीलता [तथा] शूरता (एदे गुणा) ये सब गुण (संपत्ति हेदुओ) सम्पत्ति के हेतु हैं ।

भावार्थ- स्वभाव की निर्मलता, सभी जीवों के प्रति मैत्री भाव होना, त्यागशीलता, सत्यवादिता, आलस्य (प्रमाद) की रहितता; सुशीलता-नियमित जीवन शैली और शूरवीरता ये सब गुण धन-सम्पत्ति, मान-सम्मान और पर-भव में भी सुख प्राप्त कराने वाले हैं ।

जेडुत्तं जम्मणा णेव, गुणेहिं जेडु वुच्चदे ।
गुणा गुरुत्त-माएदि, दुद्धं दहिं घिदं जहा ॥३१॥

अन्वयार्थ- (जेडुत्तं जम्मणा णेव) जेष्ठत्व जन्म से नहीं होता [अपितु] (गुणेहिं जेडु वुच्चदे) गुणों के द्वारा जेष्ठता कही गई है [क्योंकि] (गुणा गुरुत्त-माएदि) गुणों से गुरुता जन्मती है (जहा) जैसे (दुद्धं दहिं घिदं) दूध, दही [और] घी ।

भावार्थ- जेष्ठत्व-बड़प्पन जन्म से नहीं अपितु गुणों से होता है, क्योंकि गुणों से ही गुरुता का जन्म होता है । पहले जन्म, दीक्षा, शिक्षा, प्रवेश लेने से कोई बड़ा नहीं होता, वस्तुतः गुणों से ही बड़प्पन आता है । जो गुणों में बड़ा है, वही बड़ा है । जैसे क्रमशः दूध, दही और घी । चूंकि इनका जन्म बाद-बाद में हुआ है फिर भी दूध से दही और दही से घी श्रेष्ठ (बड़ा) माना जाता है।

पुत्त-दारा-गिहेहिं च, विजुत्तेहिं धणादु वा ।
बहुलस्स दुहे जादे, एगो सेय-करी धिदी ॥३२॥

अन्वयार्थ- (पुत्र-दारा-गिहेहिं) पुत्र-स्त्री-घर (च) और (धणादु) धन से (विजुतेहिं) वियुक्त होने पर (वा) अथवा (बहुलस्स दुहे जादे) बहुत दुःख के उत्पन्न होने पर (एगो) एक (धिदी) धृति (सेयकरी) कल्याणकारी है ।

भावार्थ- पुत्र-पुत्रियाँ, स्त्री-सम्बन्धियों और धन से वियुक्त अर्थात् रहित हो जाने पर अथवा एक साथ भयंकर दुःख आ पड़ने पर एक धृति भावना अर्थात् धैर्य धारण करना ही कल्याणकारी-सुखकारी है, अन्य कोई नहीं ।

**परेण परिविक्खादो, णिग्गुणो वि गुणी हवे ।
सक्को वि लहुगं जादि, सयं स-गुण-भासहिं ॥३३॥**

अन्वयार्थ- (परेण परिविक्खादो) दूसरों के द्वारा प्रशंसा किए जाने से (णिग्गुणो वि गुणी हवे) निर्गुणी भी गुणी हो जाता है [तथा] (सयं) स्वयं (स-गुणभासहिं) स्व-गुणों का कथन करने से (सक्को वि) इन्द्र भी (लहुगं जादि) लघुता को प्राप्त हो जाता है ।

भावार्थ- दूसरे लोगों के द्वारा बार-बार प्रशंसा किए जाने से निर्गुण मनुष्य भी गुणवानों की श्रेणी में गिना जाने लगता है, किन्तु इसके विपरीत स्वयं अपने मुख से अपनी प्रशंसा करने से महागुण सम्पन्न इन्द्र भी लघुता को प्राप्त हो जाता है । अतः अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए ।

**तेजो लज्जा मदी माणं, सच्चं णाणं च पोरिसं ।
खाई-पूया कुलं सीलं, पजहेंति धणक्खए ॥३४॥**

अन्वयार्थ- (तेजो लज्जा मदी माणं सच्चं णाणं पोरिसं खाई-पूया कुलं च सीलं) तेज, लज्जा, मति, मान, सत्य, ज्ञान, पौरुष, ख्याति, पूजा, कुल और शील [मनुष्य को] (धणक्खए) धनक्षय होने पर (पजहेंति) छोड़ देते हैं ।

भावार्थ- मनुष्य का धन क्षय होने पर उसके तेज, लज्जा, बुद्धि, स्वाभिमान, सत्यवादिता, ज्ञानशीलता, पौरुष, ख्याति, पूजा, कुल और शील आदि गुण धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं। धन के सद्भाव में जिस तरह गुण-सम्पन्नता सम्भव है, धन के अभाव में उस तरह की गुणसम्पन्नता अत्यन्त दुर्लभ है।

कञ्जं हिदं मिदं सेट्टं, सव्वसत्त-सुहायरं ।

मधुरं वच्छलं वक्कं, वत्तव्वं सज्जणेहि य ॥३५॥

अन्वयार्थ- (कञ्जं हिदं मिदं सेट्टं) कार्यकारी, हित, मित, श्रेष्ठ (सव्वसत्त सुहायरं) सब जीवों को सुखकारी (मधुरं) मधुर (य) और (वच्छलं वक्कं) वात्सल्य युक्त वाक्य (सज्जणेहि) सज्जनों के द्वारा (वत्तव्वं) बोले जाने चाहिए।

भावार्थ- सज्जन-पुरुषों के द्वारा कार्यकारी, हितकारी, सीमित, श्रेष्ठ-आगम सम्मत, सभी सुनने वाले जीवों को सुखकारी, मधुर और वात्सल्य-भाव युक्त वचन ही बोले जाने चाहिए। यूँ तो हमेशा सत्य ही बोलना चाहिए, परन्तु ऐसा सत्य भी नहीं बोलना चाहिए जिससे किसी को बहुत दुःख उठाना पड़े।

मणमेव मणुस्साणं, कारणं बंधमोक्खणो ।

गेहासत्तं च बंधरस्स, मोक्खरस्स संजमे ट्ठिदो ॥३६॥

अन्वयार्थ- (मणुस्साणं) मनुष्यों का (मणमेव) मन ही (बंधमोक्खणो) बन्ध-मोक्ष का (कारणं) कारण है (गेहासत्तं बंधरस्स) घर में आसक्त बन्ध का (च) और (संजमे ट्ठिदो) संयम में स्थित (मोक्खरस्स) मोक्ष का।

भावार्थ- मनुष्यों का मन ही उनके बन्ध और मोक्ष में कारण है। घर-गृहस्थी में आसक्त मन कर्मबन्ध का कारण है तथा राग-द्वेष से रहित संयम में स्थित मन मोक्ष का अर्थात् संसार से मुक्ति का कारण है। अतः मन को वश में कर आत्मकल्याण का पुरुषार्थ करना चाहिए।

विज्ञा-अत्थ-मही-सामी, तवजुत्ते महा-जणे ।

मुक्खे सत्तु-गुरुम्मि य, दायव्वं णेव उत्तरं ॥३७॥

अन्वयार्थ- (विज्ञा-अत्थ-मही-सामी) विद्या के स्वामी, धन के स्वामी, धरती के स्वामी (तवजुत्ते) तप में युक्त (महा-जणे) महा समूह में (मुक्खे) मूर्ख में (सत्तु-गुरुम्मि य) शत्रु और गुरु में (उत्तरं णेव दायव्वं) उत्तर नहीं देना चाहिए ।

भावार्थ- विद्यावान्, धनवान्, धरती के स्वामी-राजा अथवा जमींदार, तपस्वी, महाजन अर्थात् मान्य व्यक्ति अथवा बहुत सारे लोग, मूर्ख, शत्रु और गुरु को उत्तर नहीं देना चाहिए । उत्तर नहीं देने से तात्पर्य है कि ऐसे वाद-विवाद से बचना चाहिए, जो उन्हें क्रोधित कर दे । इनके सामने प्रायः मौन ही रहना चाहिए ।

भोयणे वमणे ण्हाणे, मेहुणे मलमोयणे ।

सामायिगे जिणच्चाए, सुहीणं मोण-सत्तगं ॥३८॥

अन्वयार्थ- (भोयणे वमणे ण्हाणे मेहुणे मलमोयणे) भोजन, वमन, स्नान, मैथुन, मल-त्याग (सामायिगे जिणच्चाए) सामायिक [तथा] जिनार्चना में (सुहीणं) सुधीजनों का (मोण-सत्तगं) मौन सप्तक है ।

भावार्थ- भोजन करते समय, वमन (उल्टी, कै) होते समय, स्नान करते समय, मैथुनकाल में, मल-मूत्र का त्याग करते समय, सामायिक तथा जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते समय मौन रहना चाहिए । बुद्धिमानों ने यह मौन सप्तक कहा है ।

चंदो सुज्जो घणो रुक्खो, णदी धेणू य सज्जणो ।

एदे परुवगारस्स, वट्ठंते पत्थणं विणा ॥३९॥

अन्वयार्थ- (चंदो सुज्जो घणो रुक्खो णदी धेणू य सज्जणो) चन्द्रमा, सूर्य, मेघ, वृक्ष, नदी, धेनु और सज्जन (एदे) ये (परुवगारस्स) परोपकार के लिए (पत्थणं विणा) प्रार्थना विना (वट्ठंते) प्रवृत्ति करते हैं ।

भावार्थ- चन्द्रमा, सूर्य, जल बर्षाने वाले मेघ, नदी, गाय और सज्जन मनुष्य ये विना प्रार्थना के ही लोक का उपकार करते रहते हैं । इनमें उपकार करने की महान् सामर्थ्य है और ये बिना किसी अपेक्षा के जगत का सतत् उपकार करते हैं ।

**चिंतादो णस्सदे णाणं, चिंतादो णस्सदे बलं ।
बाही होदि य चिंतादो, तम्हा कुञ्जेह चिंत णो ॥४०॥**

अन्वयार्थ- (चिंतादो णस्सदे णाणं) चिंता से ज्ञान नष्ट होता है (चिंतादो णस्सदे बलं) चिंता से बल नष्ट होता है (य) और (चिंतादो) चिंता से (बाही होदि) व्याधि होती है (तम्हा) इसलिए (चिंता) चिंता (णो) नहीं (कुञ्जेह) करो ।

भावार्थ- चिन्ता करने से ज्ञान, बल-शारीरिक तथा मानसिक बल नष्ट हो जाता है और अत्यधिक चिन्ता करने से ही बड़ी-बड़ी बीमारियाँ होती हैं, इसलिए व्यर्थ ही खून को जलाने वाली और कर्मों का बन्ध कराने वाली खोटी चिन्ताओं का त्याग कर देना चाहिए ।

**एगल्लो असहेज्जो हं, किसो य अवरिच्छिदो ।
सिविणे वि ण सोचेदि, वणराओ-दिवायरो ॥४१॥**

अन्वयार्थ- (वणराओ-दिवायरो) वनराज [तथा] सूर्य (किसो हं) मैं कृष् हूँ (असहेज्जो) असहाय हूँ (अवरिच्छिदो) उपकरणों से रहित (य) और (एगल्लो) अकेला हूँ [ऐसा] (सिविणे वि) स्वप्न में भी (ण सोचेदि) नहीं सोचते हैं ।

भावार्थ- प्रस्तुत छन्द स्व-पराक्रम का महत्त्व दर्शाते हुए कहा गया है । वनराज-सिंह तथा दिवाकर-सूर्य स्वप्न में भी यह नहीं सोचते हैं कि मैं कृष्-दुबला हूँ, असहाय हूँ, सहायक सामग्री से रहित और अकेला हूँ । इसका यह भाव है कि पराक्रमी मनुष्य समय आने पर इस प्रकार की चेष्टा भी करते हैं ।

कामी कोही तथा लोही, मज्जपो विसणाउरो ।
एदे सम्मं ण परस्संति, पच्चक्खे वि दिवायरे ॥४२॥

अन्वयार्थ- (कामी कोही तथा लोही मज्जपो विसणाउरो) कामी, क्रोधी, लोभी, शराबी तथा व्यसनासक्त व्यक्ति (एदे) ये (पच्चक्खे वि दिवायरे) सूर्य के प्रत्यक्ष होने पर भी (सम्मं) अच्छी तरह (ण परस्संति) नहीं देखते हैं ।

भावार्थ- कामी, क्रोधी, लोभी, शराबी और व्यसनासक्त अर्थात् खोटे आचरण में लगा हुआ मनुष्य ये सूर्य उदित रहते हुए भी अच्छी तरह नहीं देखते हैं, क्योंकि इनके भीतर विविध प्रकार की वासनाएँ भड़कती रहती हैं, अतः इनसे हमेशा बचना चाहिए ।

जत्थ विज्जागमो णत्थि, धणागमो य बंधुणो ।
सम्माणं तित्थ वित्तिं च, वासं कुज्जेह तत्थ णो ॥४३॥

अन्वयार्थ- (जत्थ) जहाँ (विज्जागमो धणागमो बंधूणो सम्माणं तित्थ च वित्तिं) विद्यागम, धनागम, बन्धुजन, सम्मान, तीर्थ और आजीविका (णत्थि) न हो (तत्थ) वहाँ (वासं) निवास (णो) नहीं (कुज्जेह) करना चाहिए ।

भावार्थ- जहाँ पर ज्ञान की प्राप्ति, धन की प्राप्ति, बन्धुजनों का संसर्ग, सम्मान, तीर्थ-यात्रा तथा आजीविका के साधन, इनमें से एक भी नहीं हो; वहाँ निवास कभी नहीं करना चाहिए । इनमें से एक-दो का भी यदि भली-भाँति योग हो जाए तो वहाँ निवास किया जा सकता है ।

गुरुभत्तो भवा-भीदो, विणीदो धम्मिगो सुही ।
संतो-दंतो अतंदाळू, सिस्सो हि सहलं हवे ॥४४॥

अन्वयार्थ- (गुरुभत्तो) गुरु-भक्त (भवा-भीदो) संसार से भयभीत (विणीदो धम्मिगो सुही संतो-दंतो अतंदाळू) विनीत,

धार्मिक, सुधी, शान्त, दान्त [तथा] अतंद्रालू (सिस्सो हि) शिष्य ही (सहलं) सफल (हवे) होता है ।

भावार्थ- गुरु की भक्ति करने वाला, संसार के दुःखों से भयभीत, विनयशील, धार्मिक, सुधी-विवेकी, शान्त-उपसमभाव युक्त अर्थात् मन्दकर्षणी, दान्त-इन्द्रियजयी और अतंद्रालू-आलस्य से रहित शिक्षार्थी-शिष्य ही सफल होता है, अन्य नहीं ।

**कामं कोहं तहा लोहं, सादं सिंगार कोदुगं ।
अइणिद्दाइ-सेवा य, विज्जत्थी अट्ट-वज्जदे ॥४५॥**

अन्वयार्थ- (कामं कोहं तहा लोहं, सादं सिंगार-कोदुगं अइणिद्दा) काम, क्रोध, लोभ, स्वाद, शृंगार, कौतुक, अतिनिद्रा (य) और (अइ-सेवा) अति सेवा [ये] (अट्ट) आठ (विज्जत्थी) विद्यार्थी (वज्जदे) छोड़ दे ।

भावार्थ- काम, क्रोध, लोभ, स्वाद-लोलुपता, सजने-सँवरने की चेष्टा, टी. वी., सिनेमा आदि कौतुक, बहुत सोना और हमेशा दूसरों की सेवा करते रहना ये आठ दोष विद्यार्थी अवश्य ही छोड़ दे । यदि कोई इन दोषों में प्रवर्तता हुआ भी विद्याध्ययन करना चाहे तो उसका सफल होना संदेहास्पद ही रहेगा ।

**पत्तत्थं भोयणं पाणं, दाणत्थं च धणज्जणं ।
धम्मत्थं जीविदं जेसिं, ते णरा सग्ग-गामिणो ॥४६॥**

अन्वयार्थ- (पत्तत्थं भोयणं पाणं) पात्र के लिए भोजन-पान (दाणत्थं धणज्जणं) दान के लिए धनार्जन (च) और (धम्मत्थं) धर्म के लिए (जेसिं) जिनका (जीविदं) जीवन है (ते णरा) वे मनुष्य (सग्ग-गामिणो) स्वर्गगामी हैं ।

भावार्थ- जो मनुष्य सु-पात्रों को भोजन-पान देने में सदैव तत्पर रहते हैं, दान करने के उद्देश्य से ही धन कमाते हैं और धर्म

के लिए ही, निज आत्मोन्नति के लिए ही जीवन जीते हैं, वे निश्चित ही स्वर्गों में जाने वाले हैं । ऐसे जीव परम्परा से मुक्ति भी प्राप्त करते हैं ।

**दाणे तवम्हि सूरम्हि, विण्णाणे विणएज्जये ।
माणं वा णो य कादव्वं, विविहो रयणा मही ॥४७॥**

अन्वयार्थ- (दाणे तवम्हि सूरम्हि विण्णाणे विणएज्जये) दान, तप, शूरता, विज्ञान, विनय (य) और विजय में (माणं) मान (वा) अथवा [आश्चर्य] (णो) नहीं (कादव्वं) करना चाहिए [क्योंकि] (विविहो रयणा मही) धरती विविध रत्नों से युक्त हैं ।

भावार्थ- दान, तप, शूरवीरता, विशिष्ट ज्ञान, विनय करने की कला और दूसरों को जीतने की क्षमता में अभिमान नहीं करना चाहिए; तथा 'वा' पद से यदि दूसरे मनुष्य इन गुणों से युक्त दिखते हैं तो उसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए; क्योंकि यह धरती विविध प्रकार के रत्नों से भरी हुई है ।

**रोगे पत्थं खले दुडुं, सामीए सच्च-दंसणं ।
णाणे ज्ञाणं धणे दाणं, थीए मद्दवमोसहं ॥४८॥**

अन्वयार्थ- (रोगे पत्थं) रोग में पथ्य (खले दुडुं) खल में दुष्टता (सामीए सच्च-दंसणं) स्वामी में सत्य दर्शन (णाणे ज्ञाणं) ज्ञान में ध्यान (धणे दाणं) धन में दान [तथा] (थीए मद्दवं) स्त्री में मार्दवता (ओसहं) औषधि है ।

भावार्थ- रोग होने पर उसके पथ्य का पालन करना, खल के सामने दुष्टता से पेश आना, स्वामी-गुरु अथवा पूज्यजनों को सही बात बताना, ज्ञान बढ़ने पर ध्यान बढ़ाना, धन होने पर दान देना और स्त्री से प्रेम व्यवहार रखना, ये इनकी औषधि अर्थात् दवा है ।

उज्जोगसारिणी लच्छी, किती चागाणुसारिणी ।
समाणुसारिणी विज्जा, बुद्धी कम्माणुसारिणी ॥४९॥

अन्वयार्थ- (उज्जोगसारिणी लच्छी) लक्ष्मी उद्योगानुसारिणी (किती चागाणुसारिणी) कीर्ति त्यागानुसारिणी (समाणुसारिणी विज्जा) विद्या श्रमानुसारिणी [तथा], (बुद्धी कम्माणुसारिणी) बुद्धि कर्मानुसारिणी [होती हैं] ।

भावार्थ- जितना जैसा उद्योग किया जाएगा उतनी वैसी लक्ष्मी होगी क्योंकि लक्ष्मी उद्योग के अनुसार होता है । इसी तरह जितना दान किया जाएगा उतनी ख्याति होगी क्योंकि ख्याति (कीर्ति) त्याग के अनुसार होती है । विद्या श्रम अथवा अभ्यास के अनुसार घटती-बढ़ती है और बुद्धि पूर्वकत् तथा सत्ता में स्थित कर्मों के अनुसार अच्छी-बुरी हो जाती है । इन्हें प्रयत्न पूर्वक उर्ध्वमुखी कर सकते हैं ।

भोयणं पुत्त संकिण्णं, मित्त-संकिण्णमासणं ।
अप्पाणो सत्थसंकिण्णं, बंधू-संकिण्ण-आलयं ॥५०॥

अन्वयार्थ- (भोयणं पुत्त संकिण्णं) भोजन पुत्रों से संकीर्ण (मित्त-संकिण्णमासणं) मित्रों से संकीर्ण आसन (अप्पाणो सत्थ-संकिण्णं) शास्त्रों से संकीर्ण आत्मा [तथा] (बंधू-संकिण्ण-आलयं) बन्धुओं से संकीर्ण घर [होना वैभव की निशानी है] ।

भावार्थ- भोजन पुत्रों के साथ बैठकर करना चाहिए, अच्छे मित्र इतने होने चाहिए कि जिससे आसन कम पड़ जाएँ, शास्त्राभ्यास इतना होना चाहिए कि राग-द्वेष आदि विकारों के लिए आत्मा में जगह कम पड़ जाएँ और बन्धु अर्थात् कुटुम्बीजनों से घर भरा रहना चाहिए । यह वैभव-सम्पन्नता के चिह्न हैं ।

भोजगारं कइं वेज्जं, सेवगं सत्थ-पाणिगं ।
सामीणं धणिणं मूढं, णाण-जुत्तं ण कोवदे ॥५१॥

अन्वयार्थ- (भोजगारं कइं वेज्जं सेवगं सत्थ-पाणिगं सामीणं धणिणं मूढं, णाण-जुत्तं ण कोवदे) भोजकार, कवि, वैद्य, सेवक, शस्त्रयुक्त, स्वामी, धनिक, मूर्ख [तथा] ज्ञान-सम्पन्न को कुपित नहीं करना चाहिए ।

भावार्थ- भोजन बनाने वाले रसोइया, कवि, वैद्य-डॉक्टर, सेवक-नौकर, हाथ में शस्त्र लिए हुए व्यक्ति, मालिक (गुरु), धनवान्, मूर्ख और ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति को किन्हीं कारणों से कभी-भी कुपित नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये क्रोधित होने पर महा-अनर्थ कर सकते हैं ।

**सुवक्केण जुदं दाणं, सूरत्तं खम-संजुदं ।
अगव्व-संजुदं णाणं, लोगम्हि अइ दुल्लहं ॥५२॥**

अन्वयार्थ- (सुवक्केण जुदं दाणं) सुवाक्यों से युक्त दान (सूरत्तं खम-संजुदं) क्षमा युक्त शूरता (अगव्व संजुदं णाणं) अगर्व युक्त ज्ञान (लोगम्हि अइ दुल्लहं) लोक में अति-दुर्लभ हैं ।

भावार्थ- अच्छे वचन बोलते हुए दान का देना, क्षमाभाव युक्त शूर अर्थात् शूरवीर व्यक्ति और अभिमान रहित-ज्ञान संसार में अत्यन्त दुर्लभ हैं । दानवीरता, शूरता और ज्ञानयुक्तता ये ऐसे गुण हैं, जिनके आने पर मनुष्य के अभिमान आदि दोष बढ़ जाते हैं; इसलिए इनकी निर्दोष प्राप्ति तीन लोक में भी दुर्लभ कही है ।

**लुद्धमत्थेण गेण्हेज्ज, माणिं अंजलि कम्मुणा ।
मुक्खं छंदाणुवत्तीए, जहेडुत्तेण पंडिदं ॥५३॥**

अन्वयार्थ- (लुद्धमत्थेण) लोभी को धन से (माणिं अंजलि कम्मुणा) मानी को हाथ-जोड़कर (मुक्खं छंदाणुवत्तीए) मूर्ख को छन्दानुवृत्ति से [तथा] (पंडिदं) पण्डित को (जहेडुत्तेण) यथार्थता से (गेण्हेज्ज) ग्रहण करना चाहिए ।

भावाथ- लोभी मनुष्य को धन देकर, परोपकारी, गुरु, मालिक, हठी आदि अभिमानी मनुष्य को हाथ-जोड़कर अर्थात् विनय से, मूर्ख-मन्दबुद्धि मनुष्य को उसके अनुसार प्रवृत्ति कर तथा बुद्धिमान् व्यक्ति को यथार्थ का परिचय कराकर अर्थात् सत्य व्यवहार करके ग्रहण करना अर्थात् अपने वश में करना चाहिए ।

अणाहीएज्ज सत्थं च, अजिण्णे भोयणं विसं ।

विसं गोट्ठी दलिदस्स, वुड्ढस्स तरुणी विसं ॥५४॥

अन्वयार्थ- (अणाहीएज्ज सत्थं) अभ्यास नहीं करने पर शास्त्र [विष हैं] (अजिण्णे भोयणं विसं) अजीर्ण होने पर भोजन विष है (दलिदस्स गोट्ठी विसं) दरिद्र के लिए गोष्ठी विष है [तथा] (वुड्ढस्स तरुणी विसं) वृद्ध के लिए तरुणी विष है ।

भावाथ- बार-बार अभ्यास नहीं करने पर शास्त्रज्ञान विष जैसा हो जाता है अर्थात् कुछ का कुछ प्रतिपादन होने लगता है । अजीर्ण होने पर भोजन जहर हो जाता है । सामाजिक-धार्मिक सभा दरिद्र के लिए जहर है, क्योंकि एक तो उसकी आजीविका कमाने का समय नष्ट होगा, दूसरा उसे अपमान भी सहन करना पड़ सकता है तथा बूढ़े मनुष्य के लिए तरुण-स्त्री जहर के समान शीघ्र मारने वाली होती है ।

पाणीए हि रसो सीदो, भोयणस्सादरो रसो ।

अणुकूलो रसो बंधू, मित्तस्सावंचणं रसो ॥५५॥

अन्वयार्थ- (हि) वस्तुतः (पाणीए रसो सीदो) पानी का रस शीत है (भोयणस्सादरो रसो) भोजन का रस आदर है (अणुकूलो रसो बंधू) बन्धुओं का रस अनुकूलता है [और] (मित्तस्सावंचणं रसो) मित्र का अवंचना रस है ।

भावाथ- वास्तविक बात यह है कि पानी शक्कर से नहीं अपितु अपनी शीतलता से ही मीठा लगता है, भोजन पकानों से

नहीं आदर पूर्वक कराए जाने पर मीठा लगता है, बन्धुजन संख्या में अधिक होने पर नहीं अपितु अनुकूल होने पर अच्छे लगते हैं तथा मित्र धनवान् होने पर नहीं अपितु निष्कपट व्यवहार करने से अच्छा लगता है, शोभित होता है ।

**मेहहीणा हदा देसा, पुत्तहीणं हदं धणं ।
विज्जाहीणं हदं-रूवं, हदं देहं अचारिदं ॥५६॥**

अन्वयार्थ- (मेहहीणा) मेघ रहित (देसा) देश (हदा) नष्ट हो जाते हैं (पुत्तहीणं हदं धणं) पुत्रहीन का धन नष्ट हो जाता है (विज्जाहीणं हदं-रूवं) विद्याहीन का रूपवान् होना बेकार है [तथा] (हदं देहं अचारिदं) बिना आचरण के शरीर नष्ट के समान है ।

भावार्थ- जिन देशों में बहुत समय तक पानी नहीं गिरता वे देश अकाल पड़ने से नष्ट हुए के समान है, पुत्रहीन व्यक्ति का धन भी नष्ट हुए के समान है, विद्या-ज्ञानरहित मनुष्य का सुन्दर रूप बेकार है और आचरण अर्थात् व्रत-नियमों से रहित शरीर नष्ट के समान ही है ।

**अहियारो य गब्भो य, रिणं च साण-मेहुणं ।
आरभे सुह-भासेदि, णिग्गमे दुहमेव हि ॥५७॥**

अन्वयार्थ- (अहियारो य गब्भो य रिणं च साण-मेहुणं) अधिकार, गर्भ, ऋण और श्वान-मैथुन [इनके] (आरभे) प्रारम्भ में (सुह-भासेदि) सुखं मालूम पड़ता है (णिग्गमे) निर्मम के समय [ये] (दुहमेव हि) दुःखरूप ही है ।

भावार्थ- अधिकार प्राप्त होते समय बहुत अच्छा लगता है, अपने आप पर गर्व महसूस होता है, किन्तु जब छूटता तब दुःख होता है । गर्भ जब धारण किया जाता है तब अच्छा लगता है, किन्तु प्रसूति के समय महान् दुख होता है । ऋण-कर्ज लेते समय अच्छा मालूम पड़ता है किन्तु जब चुकाने (देने) का समय आता

है तब बड़ा कष्ट होता है । ऐसे ही जब कुत्ता मैथुन सेवन करता है तब अपने को सुखी मानता है किन्तु तुरन्त ही कष्ट महसूस करने लगता है । कहने का तात्पर्य है कि ये कार्य शुरू में अच्छे मालूम पड़ते हैं पर कालान्तर में दुःख-दायक ही हैं, अतः इनसे बचो ।

**दुद्धा णारी सढं मित्तं, भिच्चो उत्तर दायगो ।
ससप्पे य गिहे वासो, मिच्चू हेदू ण संसयो ॥५८॥**

अन्वयार्थ- (दुद्धा णारी) दुष्ट स्त्री, (सढं मित्तं) मूर्ख मित्र (उत्तर दायगो भिच्चो) उत्तर देनेवाला भृत्य (य) और (ससप्पे गिहे वासो) सर्प सहित घर में निवास (मिच्चू-हेदू) मृत्यु के कारण हैं [इसमें] (ण संसयो) संशय नहीं है ।

भावार्थ- खोटे स्वभाव वाली क्रोधमुखी दुष्टा स्त्री, मूर्ख मित्र, उत्तर देने वाला नौकर और सर्प जिस घर में रहता है उसमें निवास करना; ये चार निश्चित ही मृत्यु के कारण हैं । इनसे बचने का निरन्तर प्रयास करो ।

**णखाणं च णईणं च, सिंगीणं सत्थ-पाणिणं ।
विस्सासो णेव कादव्वो, थीणं राय-जणाण वा ॥५९॥**

अन्वयार्थ- (णखाणं) नखवालों का (णईणं) नदियों का (सिंगीणं) सींगवालों का (सत्थ-पाणिणं) शस्त्र-वालों का (थीणं) स्त्रियों का (च) और (राय-जणाण वा) राज-नेताओं अथवा अधिकारियों का (विस्सासो) विश्वास (णेव) नहीं (कादव्वो) करना चाहिए ।

भावार्थ- नख वाले पशु जैसे- सिंह, बन्दर, भालू आदि का, नदी में अचानक भी बाढ़ आ जाती है, वह कहीं बहुत गहरी हो सकती है अतः नदी का, सींग वाले पशु जैसे- गाय, बैल, भैंस आदि का, हाथ में हथियार लिए हुए व्यक्ति का, स्त्रियाँ कुपित होने पर अनर्थ कर सकती हैं इसलिए स्त्रियों का, झूठे वादे करने वाले

राजनेताओं अथवा अधिकारियों का, 'चकार' से दाँत वाले पशुओं का तथा शत्रु-पक्ष का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए।

**जस्स पुत्तो वसीभूदो, णारी छंदाणुवट्टिणी ।
संतुडो पत्त-विहवे, तस्स सगो इहेव हि ॥६०॥**

अन्वयार्थ- (जस्स) जिसका (पुत्तो वसीभूदो) पुत्र वशीभूत है (णारी छंदाणुवट्टिणी) स्त्री अनुशरण करने वाली है [और जो] (पत्त-विहवे) प्राप्त वैभव में (हि) अच्छी तरह (संतुडो) सन्तुष्ट है (तस्स सगो इहेव) उसके लिए स्वर्ग यहीं है ।

भावार्थ- जिसका पुत्र आज्ञाकारी है, समर्पित है, स्त्री इच्छानुसार प्रवृत्ति करने वाली है तथा जो प्राप्त हुई धन-सम्पत्ति में ही सन्तुष्ट है, ऐसे मनुष्य के लिए यहीं स्वर्ग है, क्योंकि उसके लिए बहुत सी अनुकूलता और अनाकुलता यहीं प्राप्त हो जाती है । वस्तुतः अनाकुलता ही सुख है ।

**लोह-मूलाणि पावाणि, बाहीवो रसमूलगा ।
णेहमूलाणि दुक्खाणि, णिम्ममत्तं हि वा सुहं ॥६१॥**

अन्वयार्थ- (हि) वस्तुतः (लोह-मूलाणि पावाणि) लोभ पापों का मूल है, (बाहीवो रस-मूलगा) बीमारियाँ रस-मूलक हैं, (णेहमूलाणि दुक्खाणि) स्नेह दुःख का मूल है (वा) और (णिम्ममत्तं) निर्ममत्व (सुहं) सुख का [मूल है] ।

भावार्थ- लोभ सब पापों की जड़ है, यदि लोभ नष्ट हो जाए तो कोई भी पाप न हो । विविध प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों का निन्तर सेवन बीमारियों की जड़ है, यदि मनुष्य सादा-सीमित भोजन करे तो कभी बीमार पड़ने की नौबत ही नहीं आए । दुख का मूल कारण प्रेम है, यदि प्रेम न हो तो विकल्प भी न हों और जब विकल्प नहीं होंगे तो दुख कहाँ से होगा । इन सबसे विपरीत प्रत्येक पदार्थ के प्रति निर्ममता ही सच्चे सुख की

जननी है । अतः लोभ, रस तथा राग-भाव छोड़कर निर्ममत्व होने की चेष्टा करनी चाहिए ।

**दुराचारी-य-दुद्धि-इत्थी-चोर-खलेण वा ।
जो मित्ती कुव्वदे सेट्टं, सो वि सिग्घं विणस्सदि ॥६२॥**

अन्वयार्थ- (जो) जो (दुराचारी-दुद्धि-इत्थी-चोर-खलेण वा) दुराचारी, दुर्दृष्टि, स्त्री, चोर अथवा दुष्ट से (मित्ती कुव्वदे) मित्रता करता है (सो) वह (सेट्टं वि) श्रेष्ठ होते हुए भी (सिग्घं विणस्सदि) शीघ्र नष्ट हो जाता है ।

भावार्थ- कोई श्रेष्ठ आचरण वाला, ज्ञानवान्, धनवान् मनुष्य भी यदि दुराचारी-खोटे आचरण वाले व्यक्ति से, दुर्दृष्टि-दुर्जन से, स्त्रियों से और चोर-उच्चक्रों से मित्रता करता है, तो वह भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, बदनाम तथा निर्धन हो जाता है । अतः इनकी मित्रता से बचना चाहिए ।

**विसा वि अमिदं गेज्झं, अमेज्झादो वि कंचणं ।
णीचा वि उत्तमा विज्जा, थी-रयणं वि णिद्धणा ॥६३॥**

अन्वयार्थ- (विसा वि अमिदं) विष से भी अमृत (अमेज्झादो वि कंचणं) शौच से भी सोना (णीचा वि उत्तमा विज्जा) नीच मनुष्यों से भी उत्तम विद्या (थी-रयणं वि णिद्धणा) निर्धन कुल से भी स्त्री रत्न (गेज्झं) ग्रहण करना चाहिए ।

भावार्थ- बुद्धिमान् गृहस्थ वही है जो विष में से भी अमृत, शौच-विष्टा में से भी स्वर्ण, नीच मनुष्य से भी उत्तम विद्या तथा निर्धन कुलीन परिवार से भी उत्तम आचरण तथा गुणों से युक्त कन्या-रत्न ग्रहण कर लेता है । केवल सफेद चमड़ी और धन देखकर जाति-कुल का ध्यान रखे बिना जो विवाह सम्बन्ध करते हैं, वे मूर्ख हैं ।

आयारो कुलजाणेदि, देसं जाणेदि भासणं ।
सब्भमो जाणदे णेहं, देहं जाणेदि भोयणं ॥६४॥

अन्वयार्थ- (आयारो कुलजाणेदि) आचार से कुल जाना जाता है (देसं जाणेदि भासणं) भाषा से देश जाना जाता है (सब्भमो जाणदे णेहं) हाव-भाव से स्नेह तथा (देहं जाणेदि भोयणं) भोजन से शरीर जाना जाता है ।

भावार्थ- मनुष्य के आचरण अर्थात् आचार-विचार से उसका कुल, भाषा से उसका देश, हाव-भाव रूप व्यवहार से उसका स्नेह और भोजन की मात्रा तथा शैली से उसकी शारीरिक क्षमता का ज्ञान हो जाता है ।

जुंजेह सुउले पुत्तिं, पुत्तं विज्जासु जुंजह ।
विसणे जुंजहे सत्तुं, मित्तं धम्मे य जुंजह ॥६५॥

अन्वयार्थ- (पुत्तिं सुउले जुंजेह) पुत्री को सुकुल में जोड़ो (पुत्तं विज्जासु जुंजह) पुत्र को विद्या में जोड़ो (विसणे जुंजहे सत्तुं) शत्रु को व्यसनों में लगा दो (य) और (मित्तं धम्मे जुंजह) मित्र को धर्म में लगाओ ।

भावार्थ- समझदार गृहस्थों को अपनी पुत्री धार्मिक आचरण वाले सुकुल में देनी चाहिए, पुत्र को अच्छी विद्या के अध्ययन में लगाना चाहिए, शत्रु से लड़ने की बजाय उसे कोई खोटा व्यसन लगा देना चाहिए, जिससे वह खुद ही बर्बाद हो जाएगा, तथा मित्र को धर्मशास्त्र में लगाना चाहिए, जिससे उसका जीवन सुख-शान्ति मय हो जाएगा ।

किं हि भारो समत्थाणं, किं दूरं ववसायिणं ।
किं विदेसो य विज्जाणं, को परो पियवादिणं ॥६६॥

अन्वयार्थ- (हि) वस्तुतः (समत्थाणं) समर्थ के लिए (किं भारो) भार क्या है (ववसायिणं) व्यवसायी के लिए (किं दूरं) दूर

क्या है (विज्ञानं) विद्वान के लिए (किं विदेसो) विदेश क्या है (य) और (पियवादिणं) प्रियवादियों को (को परो) पर कौन है ।

भावार्थ- समर्थ मनुष्यों के लिए भार क्या है ? निरन्तर उद्यम करने वाले व्यक्ति के लिए दूर क्या है ? शास्त्रों में पारंगत, देश-काल-परिस्थितियों को जानने वाले विद्वान के लिए विदेश क्या चीज है ? कुछ भी नहीं । और प्रिय वचन बोलने वाले के लिए दूसरा (पर) कौन है ? कोई भी नहीं । वस्तुतः ये सभी अपने-अपने कार्यों को साधने में पारंगत होते हैं ।

उवसग्गे य आतंके, दुब्भिक्खे य भयावहे ।
असाहुजण-संसग्गे, पलायदे स जीवदे ॥६७॥

अन्वयार्थ- (भयावहे) भयंकर (उवसग्गे) उपसर्ग के आने पर (आतंके) आतंक के होने पर (दुब्भिक्खे) दुर्भिक्ष के पड़ने पर (य) और (असाहुजण-संसग्गे) दुर्जनों का संसर्ग होने पर [जो] (पलायदे) भाग लेता है (स) वह (जीवदे) जीता है ।

भावार्थ- भयंकर उपसर्ग आने पर, गुण्डा-बदमाश द्वारा आतंकित किये जाने पर अथवा भयंकर बीमारी फैलने पर, भयंकर दुर्भिक्ष के समय तथा दुष्टजनों से तकरार होने पर जो भाग जाता है, वही जीवित बचता है ।

धम्मत्थकाम-मोक्खाणं, जस्सेगोवि ण विज्जदे ।
णिप्फलं तस्स जम्मं च, जीविदं मरणं समं ॥६८॥

अन्वयार्थ- (जस्स) जिसके(धम्मत्थकाम-मोक्खाणं) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से (एगो वि णो विज्जदे) एक भी विद्यमान नहीं है (तस्स जम्मं) उसका जन्म (णिप्फलं) निष्फल है (च) और (जीविदं मरणं समं) जीवन मरण के समान है ।

भावार्थ- जिस मनुष्य में धर्म-धार्मिक आचरण, अर्थ-धन-सम्पत्ति, काम-भोग-सामग्री तथा मोक्ष अर्थात् मोक्ष प्राप्ति हेतु तीव्र

पुरुषार्थ, इन चारों में से एक भी नहीं है, उसका जीवन निष्फल और जीवन मरण के समान है । मनुष्य में चारों पुरुषार्थ होना आवश्यक हैं, किन्तु जिसके जीवन में चारों पुरुषार्थ घटित नहीं हो पा रहे हैं, उसे कम से कम धर्म पुरुषार्थ को तो अच्छी तरह सम्पन्न कर ही लेना चाहिए क्योंकि धर्म ही कल्याणकारी है ।

**आलस्सोवगदा विज्ञा, परहत्थगदं धणं ।
अप्पबीयं हदं खेत्तं, णडुं सेणा अणायगं ॥६९॥**

अन्वयार्थ- (आलस्सोवगदा विज्ञा) आलस्य को प्राप्त विद्या, (परहत्थगदं धणं) दूसरे के हाथ में गया हुआ धन (अप्पबीयं खेत्तं) अल्प-बीज युक्त खेत [और] (अणायगं सेणा) नायक रहित सेना (णडुं) नष्ट हो जाती है ।

भावार्थ- आलस्य करने से विद्या, दूसरे के हाथ में जाने से धन, कम बीज बोने से फसल और नायक रहित होने से सेना नष्ट हो जाती है । विद्या निरन्तर अभ्यास से, धन अपने पास रहने से, बीज पर्याप्त मात्रा में बोने से और सेना नायक-सहित होने से सुरक्षित रहती है ।

**वित्तेण रक्खदे धम्मं, विज्ञा जोगेण रक्खदे ।
लज्जाए रक्खदे शीलं, सण्णारी रक्खदे गिहं ॥७०॥**

अन्वयार्थ- (वित्तेण रक्खदे धम्मं) धन से धर्म रक्षित होता है (विज्ञा जोगेण रक्खदे) अभ्यास से विद्या रक्षित होती है (लज्जाए रक्खदे शीलं) लज्जा से शील रक्षित होता है [तथा] (णारीए रक्खदे गिहं) नारी से घर रक्षित होता है ।

भावार्थ- धन से धर्म की रक्षा, अभ्यास करने से विद्या की, लज्जाशीलता से शील की और सुशीला-स्त्री से घर की रक्षा होती है । इनके बिना ये नष्ट हो जाते हैं ।

दालिद्र णासणं दाणं, सीलं दुग्गदि णासणं ।

अण्णाण-णासिणी पण्णा, भावणा भवणासिणी ॥७१॥

अन्वयार्थ- (दालिद्र णासणं दाणं) दान दारिद्र्य नाशक है (सीलं दुग्गदि णासणं) शील दुर्गति नाशक है (अण्णाण-णासिणी पण्णा) प्रज्ञा अज्ञान नाशिनी है [तथा] (भावणा भवणासिणी) भावना भव नाशिनी है ।

भावार्थ- दान देने से दरिद्रता का नाश होता है, शील-ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन दुर्गति का नाश करने वाला है, निरन्तर ज्ञानाभ्यास तथा कर्मों के क्षयोपशम से उत्पन्न प्रज्ञा अज्ञान-नाशिनी है और हमेशा शुभभाव-शीलता भवभ्रमण का नाश करने वाली है ।

अत्थणासं मणोदावं, गेहिणी चरिदाणि य ।

वंचणं अवमाणं णो, मदिमंतं पयासदे ॥७२॥

अन्वयार्थ- (अत्थणासं मणोदावं) अर्थनाश, मनो-ताप (गेहिणी चरिदाणि) स्त्री का चरित्र (वंचणं) वंचना (य) और (अवमाणं) अपमान (मदिमंतं) बुद्धिमान (णो पयासदे) प्रकाशित नहीं करते हैं ।

भावार्थ- धन का नष्ट हो जाना, मन का संताप, अपनी स्त्री का खोटा चरित्र, वंचना-ठगे जाने की कथा तथा पूर्व में हुए अपने अपमान को बुद्धिमान् लोग प्रकाशित नहीं करते हैं अर्थात् दूसरों को ये सब बातें नहीं बताते हैं; क्योंकि ये बातें दूसरों को बताने से लाभ कुछ भी नहीं होगा, उल्टे निन्दा और बदनामी ही हाथ लगेगी ।

णत्थि मेहसमं णीरं, णत्थि अप्पसमं बलं ।

णत्थि चक्खुसमं तेयं, णत्थि धण्णसमं पियं ॥७३॥

अन्वयार्थ- (णत्थि मेहसमं णीरं) मेघ के समान पानी नहीं है (णत्थि अप्पसमं बलं) अपने बल के समान बल नहीं है (णत्थि

चक्रबुसमं तेयं) आँख के समान तेज नहीं है (णत्थि धण्णसमं पियं) धान्य के समान प्रिय वस्तु नहीं है ।

भावार्थ- संसार में बरषते हुए मेघों के जल के समान कोई जल नहीं है । अपने बाहुबल-स्वशक्ति के समान कोई दूसरा बल नहीं, क्योंकि समय आने पर अपनी शक्ति ही काम आती है, स्वस्थ आँखों के समान कोई भी प्रकाश नहीं है क्योंकि आँख के अभाव में सारे प्रकाश बेकार हैं । तथा धान्य-अनाज के समान प्रिय पदार्थ इस धरती पर और कोई नहीं है, क्योंकि अनाज से ही वस्तुतः प्राणियों का देह-पोषण होता है ।

णत्थि कामसमं बाही, णत्थि मोहसमं रिऊ ।

णत्थि कोवसमं अग्गी, णत्थि णाणसमं सुहं ॥७४॥

अन्वयार्थ- (णत्थि कामसमं बाही) काम के समान व्याधि नहीं है (णत्थि मोहसमं रिऊ) मोह के समान शत्रु नहीं है (णत्थि कोवसमं अग्गी) क्रोध के समान अग्नि नहीं है [और] (णत्थि णाणसमं सुहं) ज्ञान के समान सुख नहीं है ।

भावार्थ- संसार में कामोद्रेक के समान बीमारी नहीं है, क्योंकि कामी मनुष्य जघन्यतम पाप भी कर डालता है । मोह के समान शत्रु नहीं है, क्योंकि लौकिक शत्रु को शत्रुबुद्धि से दिखाने वाला यह मोह ही है । क्रोध के समान अग्नि नहीं है, क्योंकि लोक प्रसिद्ध अग्नि तो दिखते हुए पदार्थों को जलाती है, किन्तु यह क्रोधरूपी अग्नि बिना स्पष्ट दिखे जीव के गुणों को जला डालती है । तथा सच्चे ज्ञान के समान कोई सुख नहीं, क्योंकि ज्ञान बढ़ने से ही अनाकुलता बढ़ती है और अनाकुलता ही सच्चा सुख है ।

तिणं बंभविदं सग्गो, तिणं सूरस्स जीविदं ।

जिदक्खस्स तिणं णारी, णिप्फिहस्स तिणं जग ॥७५॥

अन्वयार्थ- (तिणं बंभविदं सग्गं) आत्मज्ञानी को स्वर्ग तृण

समान है (तिणं सूरस्स जीविदं) शूर के लिए जीवन तृण समान है (जिदक्खस्स तिणं णारी) इन्द्रियजयी के लिए स्त्री तृण समान है [तथा] (णिप्फिहस्स तिणं जग) निस्पृह मनुष्य के लिए सम्पूर्ण जगत् तृण समान है ।

भावार्थ- आत्मज्ञान सम्पन्न साधक को स्वर्ग, शूरवीर योद्धा के लिए जीवन, इन्द्रिय-विजयी योगी के लिए सुन्दर स्त्री तथा वीतरागी निस्पृह साधक के लिए सम्पूर्ण संसार तृण के समान तुच्छ जान पड़ता है ।

**धण-धणप्पयोगेसु, विज्जा-संगहणेसु वा ।
आहारे ववहारम्हि, चत्त लज्जा सुही हवे ॥७६॥**

अन्वयार्थ- (धण-धणप्पयोगेसु) धन-धान्य के प्रयोग में (विज्जा-संगहणेसु) विद्या के संग्रह में (वा) अथवा (आहारे) आहार में (ववहारम्हि) व्यवहार में (चत्त लज्जा सुही हवे) लज्जा त्यागी ही सुखी होता है ।

भावार्थ- धन-धान्य के लेन-देन में, विद्या के संग्रह करने में, आहार करने में तथा लोक-व्यवहार सम्बन्धी क्रियाओं में जो मनुष्य लज्जा छोड़कर प्रवृत्ति-क्रिया करता है वह ही सुखी होता है।

**संतोसं तिसु कादव्वं, सदारे भोयणे धणे ।
तिसु चेव ण कादव्वं, सज्झाए तवदाणसु ॥७७॥**

अन्वयार्थ- (सदारे भोयणे धणे) स्वदार, भोजन [तथा] धन (तिसु) [इन] तीन में (संतोसं कादव्वं) सन्तोष करना चाहिए (सज्झाए तवदाणसु) स्वाध्याय तप दान [इन] (तिसु) तीन में (ण कादव्वं) नहीं करना चाहिए ।

भावार्थ- बुद्धिमान् गृहस्थ को अपनी स्त्री, भोजन तथा धन इन तीन में सन्तोष धारण करना चाहिए, किन्तु स्वाध्याय, तप

और दान इन तीन में सन्तोष कभी भी नहीं करना चाहिए । निरन्तर स्वाध्याय करने से ज्ञान, तप से संतोष तथा दान से धन बढ़ता है।

**तेलण्हाणे चिदा-धूमे, मेहुणे छोर-कम्मणे ।
ताव हवदि चंडालो, जाव ण्हाणं करेदि णो ॥७८॥**

अन्वयार्थ- (तेलण्हाणे) तेल से स्नान करने पर (चिदा धूमे) शवदाह में जाने पर (मेहुणे) मैथुन करने पर (छोर-कम्मणे) बाल-कटाने पर [मनुष्य] (ताव) तब तक (चंडालो हवदि) चाण्डाल होता है (जाव) जब तक (ण्हाणं णो करेदि) स्नान नहीं करता है।

भावार्थ- तैलादि प्रसाधनों से स्नान करने पर अथवा बहुत सजने-सँवरने पर, शव-दाह क्रिया में जाने पर, मैथुन से निवृत्त होने पर और बाल काटने अथवा कटवाने पर मनुष्य तब तक अस्पृश्य की श्रेणी में गिना जाता है, जब तक कि वह स्नान नहीं कर लेता है । इन कार्यों के बाद स्नान अवश्य करना चाहिए ।

**दीवो भक्खदे अंधं, कज्जलं हि पसूयदे ।
जारिसं भक्खदे अण्णं, बुद्धी हवदि तारिसी ॥७९॥**

अन्वयार्थ- (दीवो अंधं भक्खदे) दीपक अन्धकार खाता है (हि) इसलिए (कज्जलं पसूयदे) काजल उत्पन्न करता है [क्योंकि] (जारिसं भक्खदे अण्णं) जिस प्रकार का अन्न खाता है (बुद्धी हवदि तारिसी) बुद्धि उसी प्रकार की हो जाती है ।

भावार्थ- यहाँ दीपक का उदाहरण देते हुए समझाया गया है कि दीपक अन्धकार को खाता है इसलिए काजल (धुआँ) उगलता है । यही बात मानव जाति पर लागू होती है कि मानव जैसा भोजन करता है वैसी ही उसकी बुद्धि हो जाती है । एक लोकोक्ति भी हैं- 'जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन; जैसा पीवे पानी, वैसी बोले बानी ।' अतः आत्महितेच्छुओं को भोजन और पानी की शुद्धता का भी ध्यान रखना चाहिए ।

मंसव्व णवणीदं च, हट्ट-भोयण भक्खणं ।
रत्तव्वागालिदं णीरं, मंसव्व णिसिभोयणं ॥८०॥

अन्वयार्थ- (णवणीदं) नवनीत (च) और (हट्ट-भोयण भक्खणं) बाजार का भोजन खाना (मंसव्व) मांस के समान है (रत्तव्वागालिदं णीरं) अनछना जल खून के समान है [तथा] (मंसव्व णिसिभोयणं) रात्रि भोजन मांस के समान है ।

भावार्थ- तैयार होने के अन्तर्मुहुर्त-अड़तालीस मिनिट बाद नवनीत-मक्खन मांस के समान हो जाता है, क्योंकि उसमें अनन्त जीव राशि उत्पन्न हो जाती है । बाजार का भोजन इसलिए मांस के समान है क्योंकि उसमें शुद्धि-अशुद्धि, शाकाहार-मांसाहार और जीवों की रक्षा का बिल्कुल ध्यान नहीं रखा जाता है । बिना छने जल में अनन्तानन्त सूक्ष्म कीटाणु होते हैं, अतः वह खून के समान कहा गया है । रात्रि में अनन्त छोटे-छोटे जीव-कीटाणुओं का संचार अत्यधिक बढ़ जाता है तथा सूर्यास्त के कारण पर्यावरण भी बदल जाता है, इसलिए रात्रि-भोजन मांस के समान है । इनका भलीभाँति त्याग करना चाहिए ।

मंसा दसगुणं धण्णं, धण्णा दसगुणं फलं ।
फला खीरं च खीरादो, घिदं जले गुणाहियं ॥८१॥

अन्वयार्थ- (मंसा दसगुणं धण्णं) मांस से धान्य में दस गुण (धण्णा दसगुणं फलं) धान्य से फल में दस गुण (फला खीरं) फल से दूध में (खीरादो घिदं) दूध से घी में [तथा] (जले) जल में (गुणाहियं) गुणाधिक्य होता है ।

भावार्थ- कुछ मूर्ख लोग मांस को ताकत देने वाला मानते हैं, किन्तु ऐसा है नहीं । मांस से धान्यों (अनाजों) में दस गुण अधिक होते हैं, धान्य से फल में, फल से दूध में, दूध से घी तथा पानी में अधिक-अधिक गुण पाये जाते हैं । पानी सबसे गुणवान

इसलिए कहा गया है, क्योंकि पानी के बिना प्राणी जीवित नहीं रह सकते। पानी के पर्यायवाची नामों में इसे जीवन और अमृत भी कहा है। अतः पानी का भी मूल्य समझना चाहिए।

**ज्ञतिं पण्णाहरी तुंडी, ज्ञतिं पण्णाकरी वचा ।
ज्ञतिं सत्तीहरी इत्थी, ज्ञतिं सत्तीकरं पयो ॥८२॥**

अन्वयार्थ- (ज्ञतिं पण्णाहरी तुंडी) तुण्डी शीघ्र बुद्धि को हरती है (ज्ञतिं पण्णाकरी वचा) बच शीघ्र प्रज्ञाकारी है (ज्ञतिं सत्तीहरी इत्थी) स्त्री शीघ्र शक्ति हरने वाली है [और] (ज्ञतिं सत्तीकरं पयो) पानी शीघ्र शक्ति-कर है।

भावार्थ- तुण्डी-कुंदरू (एक प्रकार की वनस्पती) शीघ्र बुद्धि का नाश करने वाली है। बच (एक प्रकार की औषध में काम आने वाली सूखी लकड़ी) शीघ्र बुद्धि बढ़ाने वाली है। स्त्री सेवन शीघ्र शक्ति हरने वाला तथा जल शीघ्र शक्ति प्रदान करने वाला है।

**जिब्भे ! पमाण जाणेह, भोयणे भासणे वि य ।
अइ भुत्ती अइ वुत्ती, ज्ञतिं पाणावहारिणी ॥८३॥**

अन्वयार्थ- (जिब्भे!) हे जिह्वा! (भोयणे) भोजन में (य) और (भासणे) भाषण में (पमाण जाणेह) प्रमाण को जानो (वि) क्योंकि (अइ भुत्ती अइ वुत्ती) अधिक खाना, अधिक बोलना (ज्ञतिं पाणावहारिणी) शीघ्र प्राणनाशक है।

भावार्थ- हे जीभ! तुम भोजन करने में और भाषण करने में प्रमाण को जानो अर्थात् कम खाओ और कम बोलो; क्योंकि अधिक भोजन करना तथा अधिक बोलना कभी अचानक प्राणघातक भी बन जाता है।

**अजिण्णे भेसजं णीरं, जिण्णे णीरं बलप्पदं ।
भोयणे अमिदं णीरं, भोयणंते विसं हवे ॥८४॥**

अन्वयार्थ- (अजिण्णे भेसजं णीरं) अजीर्ण में पानी औषधि है (जिण्णे णीरं बलप्पदं) जीर्ण में पानी बलप्रद है (भोयणे अमिदं णीरं) भोजन में पानी अमृत है [और] (भोयणंते विसं हवे) भोजन के अन्त में विष होता है ।

भावार्थ- अजीर्ण-पेट की खराबी होने पर पानी पीना औषधि का काम करता है । जीर्ण-भोजन पच जाने के बाद पानी पीना बल-बढ़ाने वाला है । भोजन के मध्य में पानी पीना अमृत के समान लाभकारी है तथा भोजन के अन्त में खूब पानी पीना जहर के समान हानिकारक है ।

इक्खुदंडं तिलं छुदं, कंतं हेमं च मेदणिं ।

चंदनं दहि-तंबूलं, मद्दणं गुण-वड्डणं ॥८५॥

अन्वयार्थ- (इक्खुदंडं तिलं छुदं कंतं हेमं मेदणिं चंदनं दहि च तंबूलं) इक्षुदण्ड, तिल, क्षुद्र, स्त्री, स्वर्ण, धरती, चन्दन, दही और पान [इनके] (मद्दणं गुण-वड्डणं) मर्दन से गुण बढ़ते हैं ।

भावार्थ- गन्ना-ईख, तिल-एक प्रकार का तेल वाला धान्य, क्षुद्र-नीच मनुष्य, कान्ता-स्त्री, सोना, खेत, चन्दन, दही, और ताम्बूल-पान; इनको जितना-जितना मर्दित किया जाता है, उतने इनके गुण बढ़ते जाते हैं ।

मादुव्व पर-णारीओ, परदव्वाणि लोड्डिव ।

अप्पव्व सव्वभूदाणि, जो परस्सेदि स पंडिदो ॥८६॥

अन्वयार्थ- (मादुव्व पर-णारीओ) परस्त्री को माता के समान (परदव्वाणि लोड्डिव) परधन को पत्थर के समान (अप्पव्व सव्वभूदाणि) अपने समान सभी जीवों को (जो) जो (परस्सेदि) देखता है (स) वह (पंडिदो) पण्डित है ।

भावार्थ- जो बुद्धिमान गृहस्थ दूसरों की स्त्रियों को माता के समान अथवा अपने से उम्र में बड़ी स्त्रियों को माँ के समान, बराबर

वाली को बहिन के समान और छोटी को पुत्री के समान देखता (मानता) है, दूसरों के धन को पत्थर के समान मानता है अर्थात् उस पर अधिकार नहीं करता है, तथा अपनी आत्मा के समान ही सभी जीवों की आत्मा को मानता है, वह पण्डित है, ज्ञानी है ।

**जलबिंदु-णिवादेण, कमसो पूरिदे घडो ।
तहेव सव्वविज्जाणं, धम्माणं च धणाण वा ॥८७॥**

अन्वयार्थ- [जिस प्रकार] (कमसो) क्रमशः (जलबिंदु-णिवादेण) जलबिन्दु गिरने से (पूरिदे घडो) घड़ा भर जाता है (तहेव) उसी प्रकार (सव्वविज्जाणं) सभी विद्याओं को (धम्माणं) धर्म को (च) और (धणाणं) धन को [जानो] ।

भावार्थ- जिस प्रकार एक-एक बून्द पानी से घड़ा भर जाता है, उसी प्रकार परिश्रम से अर्जित अक्षर-अक्षर ज्ञान से मनुष्य महा-विद्वान्, थोड़े-थोड़े धर्माचरण से धार्मिक तथा थोड़े-थोड़े धन के संचय से धनवान् बन जाता है ।

**सहावेण हि तुस्संति, देवा सप्पुरिसा पिदा ।
जादीओ अण्ण-पाणेहिं, वक्कदाणेण पंडिदा ॥८८॥**

अन्वयार्थ- (देवा सप्पुरिसा पिदा) देव सत्पुरुष पिता (सहावेण हि तुस्संति) स्वभाव से ही (जादीओ अण्ण-पाणेहिं) जाति-बन्धु अन्न-पान से (वक्कदाणेण पंडिदा) वाक्यदान से पंडितजन (तुस्संति) संतुष्ट होते हैं ।

भावार्थ- देव, सत्पुरुष और पिता तो अपने भक्त-प्रशंसक-पुत्र पर स्वभाव से ही प्रसन्न रहते हैं, सजातीय भाई-बन्धु भोजन-पानी के द्वारा तथा सुवचनों के प्रयोग पूर्वक चर्चा करने से पंडितजन प्रसन्न होते हैं ।

**कम्माएदि फलं पुंसं, बुद्धी कम्माणुसारिणी ।
तहावि सुविचारेहिं, चरिया चरदे सुही ॥८९॥**

अन्वयार्थ- (पुंसं कम्माएदि फलं) मनुष्य को कर्मानुसार फल (प्राप्त होता है) (च) और (बुद्धी कम्माणुसारिणी) बुद्धि कर्मानुसार होती (तहावि) फिर भी (सुही) बुद्धिमान् (सुविचारेहिं, चरिया चरदे) विचार पूर्वक आचरण करते हैं ।

भावार्थ- मनुष्यों को कर्म के उदय से ही अच्छा-बुरा, सुख-दुःख रूप कर्मफल प्राप्त होता है और बुद्धि भी कर्मों के अनुसार होती है, फिर भी बुद्धिमान् जन अच्छी तरह सोच-विचार कर ही कोई क्रिया करते हैं, आचरण करते हैं ।

**जले तेलं खले गुज्झं, पत्ते दाणं मणाग वि ।
पण्णे सत्थं सयं जादि, वित्थरं वत्थुसक्किदो ॥१०॥**

अन्वयार्थ- (जले तेलं) जल में तेल (खले गुज्झं) खल में रहस्य (पत्ते दाणं) पात्र में दान (पण्णे सत्थं) प्रज्ञावान् में शास्त्र (मणाग वि) थोड़ा भी (सयं) स्वयं (वत्थुसक्किदो) वस्तुशक्ति से (वित्थरं) विस्तार को (जादि) प्राप्त हो जाता है ।

भावार्थ- अपनी शक्ति से जल में गिरा हुआ तेल, दुष्ट व्यक्ति में गया हुआ थोड़ा सा गुप्त रहस्य, सुपात्र में दिया गया थोड़ा सा दान तथा प्रज्ञावान् मनुष्य को प्राप्त हुआ थोड़ा सा ज्ञान, ये थोड़े होते हुए भी इनके आश्रय से स्वयं विस्तार को प्राप्त हो जाते हैं ।

**सो जीवेदि गुणा जेसिं, धणं धम्मो स जीवदे ।
गुण धम्म विहीणस्स, जीविदं मरणं समं ॥११॥**

अन्वयार्थ- (जेसिं गुणा) जिसमें गुण हैं (सो जीवेदि) वह जीवित है (धणं धम्मो) जिसमें धन और धर्म है (स जीवदे) वह जीवित है (गुण-धम्म विहीणस्स) गुण धर्म विहीन का (जीविदं मरणं समं) जीवन मरण समान है ।

भावार्थ- जिस बुद्धिमान् मनुष्य में ज्ञान, विवेकता, निर्लोभता, संयम, सम्यग्दर्शन, निरभिमानता, क्षमाशीलता आदि

अनेक गुण है, वह जीवित है तथा जिसमें सतत् धर्म भावना प्रवाहित है, आत्म-तत्त्व के प्रति गहरा समर्पण है, वह जीवित है । शेष मनुष्य जो किसी भी अच्छे गुण और धर्मभावना से रहित हैं, उनका जीवन और मरण समान है । उनका जीवित रहना भी मरे हुए के समान है गुणवान्-धर्मी जीव मरने के बाद भी जीवित के समान स्मरण किए जाते हैं ।

**सुसिद्धमोसहं धम्मं, गिहच्छिद्वं च मेहुणं ।
कुभुतं कुस्सुदं णेव, मदिमंतं पयासदे ॥९२॥**

अन्वयार्थ- (सुसिद्धमोसहं) सुसिद्ध औषधि (धम्मं) धर्म (गिहच्छिद्वं) घर का छिद्र (मेहुणं) मैथुन (कुभुतं) कुभोजन (च) और (कुस्सुदं) कुश्रुत (मदिमंतं) बुद्धिमान् (णेव) नहीं (पयासदे) प्रकाशित करते हैं ।

भावार्थ- अच्छी तरह से सिद्ध कार्यकारी औषधि, आचरण में लाये जा रहे व्रत-नियम आदि धर्माचरण, घर का छिद्र अथवा आपातकालीन दरवाजा, मैथुन-सेवन, गरीबी के कारण किया जा रहा मोटा-सस्ता भोजन तथा सुने गये खोटे-अपमानजनक शब्द बुद्धिमान् मनुष्य दूसरों को नहीं बताते हैं, क्योंकि ये सब बातें कभी-कभी बहुत हानिकारक सिद्ध होती हैं ।

**धम्मं धणं च धण्णं च, गुरु वयण-मोसहं ।
सु-गहिदं च कादव्वं, अण्णहा णो दु जीवदे ॥९३॥**

अन्वयार्थ- (धम्मं धणं च धण्णं च, गुरु वयण-मोसहं) धर्म, धन, धान्य, गुरुवचन और औषधि (सु-गहिदं) अच्छी तरह ग्रहण करना चाहिए (अण्णहा णो दु जीवदे) अन्यथा जीवित नहीं बचता ।

भावार्थ- धर्म, धन, धान्य, गुरुवचन और औषधि इन्हें विवेकपूर्वक, सोच समझकर अच्छी तरह ग्रहण करना चाहिए

अन्यथा जीवन भी संकट में पड़ जाता है । 'चकार' से मन्त्र-तन्त्र और ज्योतिष का ग्रहण भी विवेकपूर्वक करना चाहिए ।

**विज्रत्थी सेवगो राही, छुहत्तो भयकादरो ।
भंडारी पडिहारी य, सत्त-सुत्ता हि बोधदे ॥९२॥**

अन्वयार्थ- (विज्रत्थी) विद्यार्थी (सेवगो) सेवक (राही) पथिक (छुहत्तो) क्षुधातुर (भयकादरो) भयभीत (भंडारी) कोषाध्यक्ष (च) और (पडिहारी) (इन) (सत्त-सुत्ता हि बोधदे) सात सोते हुआओं को जगा देना चाहिए ।

भावार्थ- विद्यार्थी, सेवक-नौकर, पथिक-राहगीर, भोजन कराने के लिए क्षुधातुर, भयमुक्त करने हेतु भयभीत मनुष्य, कोष की सुरक्षा हेतु कोषाध्यक्ष को तथा देश की, नागरिकों की सुरक्षा के लिए पुलिस-सैनिक, इन सात को यदि ये सो रहे हों तब भी जगा देना चाहिए ।

**सप्पं णिवं च दुड्डं च, विंहिं च बालगं तहा ।
अण्णं साणं च मुख्खं च, सत्त-सुत्ता ण बोधदे ॥९५॥**

अन्वयार्थ- (सप्पं) सर्प (णिवं) राजा (दुड्डं) दुष्ट (विंहिं) बर्ष (बालगं) बालक (अण्णं साणं) दूसरों का कुत्ता (तहा) तथा (मुख्खं) मूर्ख (इन) (सत्त-सुत्ता ण बोधदे) सात सोते हुआओं को जगाना नहीं चाहिए ।

भावार्थ- सर्प, राजा, दुर्जन व्यक्ति, बर्ष-ततैया, बालक, दूसरों का कुत्ता तथा मूर्ख अथवा पागल मनुष्य इन सात सोते हुआओं को जगाना नहीं चाहिए, क्योंकि ये जागकर महा-अनर्थ भी कर सकते हैं ।

**एगरुक्ख समारुढा, णाणावण्णा विहंगमा ।
दिसासु-दससु ऊसाए, का तत्थ परिवेयणा ॥९६॥**

अन्वयार्थ- (एगरूक्ख समारुढा) एक वृक्ष पर बैठे हुए (णाणावण्णा विहंगमा) नाना वर्ण के पक्षी (ऊसाए) प्रातःकालीन बेला में (दससु दिसा) दश दिशाओं में [उड़ जाते हैं] (तत्थ) उसमें (का) क्या (परिवेयणा) दुःख करना ।

भावार्थ- एक वृक्ष पर बैठे हुए विविध वर्णों के विविध पक्षी प्रातःकाल होते ही विविध दिशाओं में उड़कर चले जाते हैं, अब इसमें दुःख की क्या बात है अर्थात् ऐसा तो होता ही रहता है । जहाँ संयोग होगा, वहाँ वियोग भी अवश्य होगा । इसलिए किसी के वियोग में क्या दुःख करना ।

अणवट्ठिद-कज्जस्स, णो जणे णो वणे सुहं ।

जणे दहेदि संसग्गो, वणे संग विवज्जणं ॥९७॥

अन्वयार्थ- (अणवट्ठिद-कज्जस्स) अनवस्थित कार्य वाले को (णो जणे णो वणे सुहं) न मनुष्यों में, न वन में सुख [होता है] (जणे दहेदि संसग्गो) मनुष्यों में संसर्ग [तथा] (वणे संग विवज्जणं) वन में संग विवर्जन (दहेदि) जलाता है ।

भावार्थ- जिसका मन स्थिर नहीं है अथवा जो स्थिर मन से कोई भी कार्य नहीं करता, वह मनुष्य न तो मनुष्यों के बीच ग्राम, नगर आदि में रहता हुआ सुखी हो सकता है और न ही वन-जंगल में; क्योंकि मनुष्यों के बीच में उसे अच्छा-बुरा संसर्ग-संपर्क जलाता है, तो जंगल में संग विवर्जन भी भीतर-भीतर जलाता रहता है । स्थिरमनवाला मनुष्य हर जगह हमेशा सुखी रहता है ।

जहा धेणू सहस्सेण, वच्छो गच्छेदि मायरं ।

तहा जेण कयं कम्मं, कत्तारमणुगच्छदि ॥९८॥

अन्वयार्थ- (जहा) जैसे, (धेणू सहस्सेण) हजारों गायों में (वच्छो)-बछड़ा (मायरं) माता को (गच्छेदि) प्राप्त करता है (तहा) वैसे ही (जेण कयं कम्मं) जिसका किया कर्म है (कत्तारमणुगच्छदि) कर्ता का अनुशरण करता है ।

भावार्थ- जिस प्रकार हजारों गायों के बीच भी बछड़ा अपनी माँ को ढूढ़ लेता है, उसका अनुशरण करता है, उसी प्रकार जिसके द्वारा किया गया कर्म है वह उसी को शुभाशुभ फल देता है । किसी अन्य का कर्म किसी अन्य को तीन काल में भी फल नहीं दे सकता है । अपने दुःख सुख के जिम्मेदार हम स्वयं हैं ।

**धम्मट्ठाणे मसाणे य, रोगीसुं जा मदी हवे ।
सा वि णिच्चं हि चिट्ठेज्ज, को ण णस्सेदि बंधणं ॥९७॥**

अन्वयार्थ- (धम्मट्ठाणे) धर्मस्थान में, (मसाणे) श्मशान में (य) और, (रोगीसुं) रोगियों में [उन्हें देखने पर] (जा मदी हवे) जो बुद्धि होती है (हि) वस्तुतः (सा) वह (णिच्चं) हमेशा (चिट्ठेज्ज) रहे [तो] (को) कौन (बंधणं ण णस्सेदि) कर्म बन्धन को नष्ट नहीं कर देता ।

भावार्थ- धर्मसभा, मंदिर आदि धर्मस्थान में, शव जलाने के स्थान श्मशान में जैसी बुद्धि होती है, यदि वैसी बुद्धि हमेशा बनी रहे तो फिर संसार में ऐसा कौन-सा मनुष्य है जो संयम धारण कर, तपस्या के द्वारा कर्म-बन्धनों को नष्ट न कर डालता ।

**णिराउलेण धम्मणेणं, साहिमाणेण जीविदं ।
अंते समाहि-मिच्चुं च, दाएज्ज णाहिणंदणं ॥१००॥**

अन्वयार्थ- (णिराउलेण) निराकुलतापूर्वक (धम्मणेणं) धर्म युक्त (साहिमाणेण) स्वाभिमान् सहित (जीविदं) जीवन (च) और (अंते) अंत में (समाहि-मिच्चुं) समाधिमरण (णाहिणंदणं) नाभिनन्दन (दाएज्ज) देवें ।

भावार्थ- निराकुलता पूर्वक, धर्म युक्त, स्वाभिमान सहित जीवन और जीवन के अंतिम क्षणों में श्री नाभिनन्दन ऋषभदेव भगवान् (मुझे) समाधिपूर्वक/समताभाव सहित मरण प्रदान करें ।

धम्मत्थकाम-पत्तत्थं, कल्लाणत्थं च मोक्खणं ।
समणेण सुणीलेण, किदं णीदी य संगहं ॥१०१॥

अन्वयार्थ- [मनुष्यों को] (धम्मत्थकाम-पत्तत्थं) धर्म अर्थ काम की प्राप्ति के लिए [निज के] (कल्लाणत्थं) कल्याण के लिए (च) और [दोनों के] (मोक्खणं) मोक्ष के लिए (समणेण सुणीलेण) श्रमण सुनीलसागर ने [यह] (णीदी संगहं) नीतियों का संग्रह (किदं) किया है ।

भावार्थ- सभी मनुष्यों को धर्म अर्थ तथा काम की प्राप्ति के प्रयोजन से, अपने (आत्म) कल्याण के प्रयोजन से और सभी भव्य जीवों को मोक्ष प्राप्ति के प्रयोजन से; श्रमण मुनि सुनीलसागर ने यह नीतियों का संग्रह किया है ।

॥ इदि णीदी-संगहो समत्तो ॥



परमेष्ठि-त्थुदि

घादिचदुक्कं खविदूण कम्मं, अणंत-णाणादि चदुक्क-पत्तं ।
णिरवेक्ख-बंधुं तिल्लोयणाहं, अरहंतदेवं तं हं णमामि ॥१॥

अन्वयार्थ- [जो] (घादिचदुक्कं) घातियाचतुष्क, (कम्मं) कर्मों को (खविदूण) नष्टकर (अणंत-णाणादि चदुक्क-पत्तं) अनंतज्ञानादि चतुष्टय को प्राप्त (णिरवेक्ख-बंधुं)निरपेक्ष बंधु [और] (तिल्लोयणाहं) तीन लोक के स्वामी हैं, (तं) उन (अरहंतदेवं) अरहंतदेव को (हं) मैं (णमामि) नमन करता हूँ ।

णट्टकम्मं विगदं-सरीरं, गुणट्टपत्तं थिर-अप्पभावं ।
देहप्पमाणं सुविसुद्ध-सत्तं, णिच्चं णमामि तं सिद्धभयवं ॥२॥

अन्वयार्थ- [जो] (णट्टकम्मं) आठ कर्मों से रहित (विगदं-सरीरं) शरीर रहित (गुणट्टपत्तं) अष्टगुणों को प्राप्त (थिर-अप्पभावं) आत्मस्वभाव में स्थिर (देहप्पमाणं) शरीर प्रमाण [शुद्ध आकार वाले] (सुविसु-सत्तं) अत्यन्त विशुद्ध आत्मावाले हैं (तं) उन (सिद्धभयवं) सिद्ध भगवान् को [मैं] (णिच्चं) नित्य (णमामि) नमस्कार करता हूँ ।

णाणादि-आयारे पंच-सुजुत्तं, सिक्खेदि सत्थं णियसिस्सवग्गं ।
दिक्खादि दायं कुसलं मुणिदं, कप्पादि-णिट्ठं पणमामि सूरिं ॥३॥

अन्वयार्थ- [जो] (णाणादि-आयारे पंच-सुजुत्तं) ज्ञानादि पंचाचारों में अच्छी तरह से युक्त हैं (णियसिस्सवग्गं) निज शिष्य वर्ग को (सत्थं) शास्त्र (सिक्खेदि) सिखाते हैं (दिक्खादि दायं) दीक्षादि दान में (कुसलं मुणिदं) कुशल मुनीन्द्र हैं (कप्पादि-णिट्ठं) स्थिति कल्पों में निष्ठ हैं [उन] (सूरिं) आचार्य को [मैं] (पणमामि) प्रणाम करता हूँ ।

आयार-सुतं च ठाणादि अंगे, उप्पाद-पुव्वंग इच्चादि सत्थे ।
जुतं सयं जुंजदि साहुवग्गं, उवज्झाय-साहुं सम्मं णमामि ॥४ ॥

अन्वयार्थ- [जो] (आयार-सुतं) आचार सूत्र (ठाणादि अंगे) स्थानादि अंग [साहित्य] में (च) और (उप्पाद-पुव्वंग इच्चादि) उत्पाद पूर्वांग इत्यादि [पूर्वगत साहित्य के] (सत्थे) शास्त्रों में (सयं) स्वयं (जुतं) युक्त है [तथा] (साहुवग्गं) साधुवर्ग को [उन शास्त्रों के अध्ययन में] (जुंजदि) लगाते हैं [उन] (उवज्झाय-साहुं) उपाध्याय-साधु को [में] (सम्मं) अच्छी तरह से (णमामि) नमन करता हूँ ।

आसा-कसाया-विसयादु रित्तो, णाणे य ज्ञाणे समदाए चिट्ठो ।
सुलीणो ति-रयणं पालणत्थे, तं साहुवग्गं सददं णमामि ॥५ ॥

अन्वयार्थ- [जो] (आसा-कसाया-विसयादु) आशा कषायों-विषय-वासनाओं से (रित्तो) रहित हैं, (णाणे) ज्ञान में (ज्ञाणे) ध्यान में (समदाए) समताभाव में (चिट्ठो) स्थित हैं [चेष्टावान् हैं] (य) और (ति-रयणं) रत्नत्रय (पालणत्थे) पालन के प्रयोजन में (सुलीणो) अच्छी तरह से लीन हैं (तं) उन (साहुवग्गं) साधुवर्ग को [में] (सददं) हमेशा (णमामि) नमन करता हूँ ।



जिणिंद-त्थुदि

चक्किंद देविंद य पूयणीया, धणिंद णाइंद य अच्चणीया ।
अणंत जीवाण कल्लाण कत्ता, सुमग्गदायं अरहं णमामि ॥१॥

अन्वयार्थ- (चक्किंद देविंद य पूयणीया) चक्रवर्ती व देवेन्द्रों द्वारा पूज्यनीय (धणिंद णाइंद य अच्चणीया) धनेंद्र व नागेन्द्रों से अर्च्यनीय (अणंत जीवाण कल्लाण कत्ता) अनंत जीवों का कल्याण करने वाले [तथा] (सुमग्गदायं) सुमार्ग देने वाले (अरहं णमामि) अरहंत भगवान् को [मैं] नमन करता हूँ ।

दोसाण रिता पडिहेर जुत्ता, अणंत णाणादि गुणाण पत्ता ।
जम्मं च मिच्चुं च विणासणट्ठं, जिणिंदभयवं णिच्चं णमामि ॥२॥

अन्वयार्थ- (दोसाण रिता) दोषों से रहित (पडिहेर जुत्ता) प्रातिहार्य युक्त (अणंत णाणादि गुणाण पत्ता) अनंत ज्ञान आदि गुणों को प्राप्त (जिणिंदभयवं) जिनेन्द्र भगवान् को (जम्मं च मिच्चुं च विणासणट्ठं) जन्म-मृत्यु और बुढापा के विनाश के लिए [मैं] (णिच्चं णमामि) नित्य नमन करता हूँ ।

विग्घा पणस्संति भयं ण जंति, णो छुद्धदेवा परिपीडयंति ।
अत्थं जहेच्छं च णरा लहंते, णस्संतिपावं जिणदंसणेण ॥३॥

अन्वयार्थ- (जिणदंसणेण) जिनेन्द्र-दर्शन से (विग्घा पणस्संति) विघ्न नष्ट हो जाते हैं (भयं ण जंति) भय नहीं आते हैं (णो छुद्धदेवा परिपीडयंति) न छुद्रदेव परेशान करते हैं (अत्थं जहेच्छं च णरा लहंते) मनुष्य यथेष्ट धन को पाते हैं (च) और (णस्संतिपावं) पाप नष्ट हो जाते हैं ।

मूगो य बोल्लेदि पंगू चलेदि, पस्सेदि अंधो बहिरो सुणेदि ।
जस्सप्पयासे णट्ठेदि विग्घं, जिण्णिंदभयवं णिच्चं णमामि ॥४॥

अन्वयार्थ- (जस्सप्पयासे) जिनके प्रसाद से (मूगो य बोल्लेदि) मूक बोलता है (पंगू चलेदि) पंगू चलता है (पस्सेदि अंधो) अंधा देखता है (बहिरो सुणेदि) बहरा सुनता है (य) और (णट्ठेदि विग्घं) विघ्न नष्ट होते हैं [उन] (जिण्णिंदभयवं) जिनेन्द्र भगवान् को [मैं] (णिच्चं णमामि) नित्य नमन करता हूँ ।

रोगा ण पस्संति कुविदा समाणा, दालिद्ध पस्संति चगिदा हि दूरा।
कुगदी विरत्ता सत्तू समाणा, जिणदंसणेणं णमस्सणेणं ॥५॥

अन्वयार्थ- (जिणदंसणेणं) जिनेन्द्रदेव के दर्शनों से (णमस्सणेणं) नमस्कार करने से (रोगा ण पस्संति कुविदा समाणा) रोग कुपित हुए के समान नहीं देखते हैं (दालिद्ध पस्संति चगिदा हि दूरा) दारिद्र चकित हुए के समान दूर से देखता है (कुगदी विरत्ता सत्तू समाणा) कुगति शत्रु के समान विरक्त रहती है ।

बंधा य विण्हू सिव, विस्सकम्मा, बुद्धं गणेसादि णामेहि जुत्ता ।
रामं हरिं जिण पण्णट्ट कम्मा, जिण्णिंदभयवं णिच्चं णमामि ॥६॥

अन्वयार्थ- (पण्णट्ट कम्मा) प्रनष्ट कर्म हैं [ऐसे] (बंधा विण्हू सिव विस्सकम्मा बुद्धं गणेसादि) ब्रह्मा, विष्णु, शिव, विश्वकर्मा, बुद्ध, गणेश आदि (रामं हरिं) राम, हरि (य) और (जिण) जिन आदि (णामेहि जुत्ता) नामों से युक्त (जिण्णिंदभयवं) जिनेन्द्र भगवान् को [मैं] (णिच्चं णमामि) नित्य नमन करता हूँ ।

दिणेक्क जादा सुहपुण्णपुंजा, जिण्णिंद-देवस्स णमस्सणेणं ।
अणंतजम्मेण सो वि णो जादा, णंतेण कज्जेण सुमंगलेणं ॥७॥

अन्वयार्थ- (जिण्णिंद-देवस्स णमस्सणेण) जिनेन्द्र देव को नमस्कार करने से [जो] (सुहपुण्णपुंजा) शुभ पुण्य का पुंज (दिणेक्क जादा) एक दिन में ही उत्पन्न हो जाता है (सो) वह (णंतेण कज्जेण

सुमंगलेण) मंगलमय अनंत कार्यो से (अणंतजम्मेण वि णो जादा)
अनंत जन्मों में भी नहीं उत्पन्न होता है ।

पूजा जे कुव्वंति जिणेस्सराणं, झायंति वा भावविसुद्ध-चित्ता ।
ते सज्जणा ताव-विणासणद्धं, पावंति मोक्खं सुह-सग्ग-भुत्ता ॥८॥

अन्वयार्थ- (जे) जो (ताव विणासणद्धं) संसार ताप विनाश
के प्रयोजन से (जिणेस्सराणं) जिनेन्द्र भगवंतों की (पूजा) पूजा
(कुव्वंति) करते हैं (झायंति वा भावविसुद्ध चित्ता) अथवा अत्यन्त
विशुद्ध भाव युक्त चित्त से ध्यान करते हैं (ते सज्जणा) वे सज्जन
(सग्ग-सुह-भुत्ता) स्वर्ग सुख भोगकर (मोक्खं) मोक्ष को (पावंति)
प्राप्त करते हैं ।

जय-मंगलं

जय मंगलं णिच्च सुहमंगलं-२
जय विमल गुण णिलय सिद्धाणं ! ते-२
णिव्वाणपत्तो णिरुवी णिरुवमो,
गुण अणंत जुत्तो णाणादि अणुवमो ।
गुण पुण्ण पत्तं कल्लाणं ! ते
जय विमल. ॥१॥

जोगीणं झाणगम्म परम सुहमओ,
कम्म-णोकम्महीण, सुद्धरुविणो ।
दुह-हत्ता जीवाण भव्वाणं ! ते
जय विमल. ॥२॥

सद्ध गंध रस रूव आदि विरहिदो,
असरीर तणु-पमाण सुद्ध सहिदो ।
लोय-सिहर वासी य पुण्णाणं ! ते
जय विमल. ॥३॥

चउवीस-तित्थयर-त्थुदि

जो विस्सकत्ता हर विस्सकम्मा, बंहा य विण्हू सिव-विस्सधम्मा ।
अणंत जीवाण सुमग्ग दायं, तं आदिणाहं पणमामि णिच्चं ॥१॥

अन्वयार्थ- (जो) जो (विस्सकत्ता) विश्वकर्ता (हर) हर (विस्सकम्मा) विश्वकर्मा (बंहा) ब्रह्मा (विण्हू) विष्णु (सिव) शिव (विस्सधम्मा) विश्वधर्म हैं (य) और (अणंत जीवाण) अनन्त जीवों को (सुमग्ग दायं) सुमार्ग देने वाले हैं (तं आदिणाहं) उन आदिनाथ भगवान को [मैं] (णिच्चं) नित्य (पणमामि) प्रणाम करता हूँ ।

जिय अट्ठकम्मं लीणं सुहावं, अणंत णाणादि सुपत्तभावं ।
दुक्खावहारी सिवसोक्खयारी, देविंद-वंदं अजिदं णमामि ॥२॥

अन्वयार्थ- [जो] (अट्ठकम्मं) अष्टकर्मों को (जिय) जीतकर (सुहावं लीणं) स्वभाव लीन हैं (अणंत णाणादि सुपत्त भावं) अनन्त ज्ञानादि भावों [गुणों] को अच्छी तरह से प्राप्त (दुक्खावहारी) दुःखों को हरने वाले [तथा] (सिवसोक्खयारी) मोक्षसुख को करने वाले हैं, [उन] (देविंद-वंदं अजिदं णमामि) देवेन्द्र-वंद्य अजितनाथ भगवान को [मैं] नमन करता हूँ ।

झाणप्पबंधप्पहवेण जेण, हंतूण कम्मं पयडीओ पुण्णं ।
मुत्ती सरुवी पदवीए पत्तो, तं संभवं जिणदेवं णमामि ॥३॥

अन्वयार्थ- (जेण) जिन्होंने (झाणप्पबंधप्पहवेण) ध्यान-प्रबन्ध के प्रभाव से (पुण्णं) सम्पूर्ण (कम्मं पयडीओ) कर्म प्रकृतियों को (हंतूण) नष्टकर (मुत्ती सरुवी पदवीए पत्तो) मुक्ति स्वरूपी पदवी को प्राप्त किया (तं संभवं जिणदेवं णमामि) उन संभवनाथ जिनदेव को [मैं] नमन करता हूँ ।

अहिणंदणो हि सुणंदणाणं, भव्वाण जीवाण अप्पहिदाणं ।
पयासिदं णिम्मल जेण धम्मं, देवाहिदेवं पणमामि णिच्चं ॥४॥

अन्वयार्थ- (हि) वास्तव में (अहिणंदणो) अभिनन्दन (सुणंदणाणं) सुनन्दन के लिए हैं, (भव्वाण जीवाण अप्पहिदाणं) भव्यजीवों को आत्महित के लिए हैं, (जेण) जिन्होंने (णिम्मल-धम्मं) निर्मल-धर्म (पयासिदं) प्रकाशित किया [उन] (देवाहिदेवं) देवाधिदेव [अभिनन्दननाथ भगवान को मैं] (णिच्चं) नित्य (पणमामि) प्रणाम करता हूँ ।

सम्मत्तदाणे य मेहं समाणा, सण्णाणदाणे पियबंधू तुल्ला ।
चारित्त-मोक्खं च वरभतीए हि, तं देवदेवं सुमदिं णमामि ॥५॥

अन्वयार्थ- [जो] (सम्मत्तदाणे य मेहं समाणा) सम्यक्त्वदान में मेघ के समान हैं, (सण्णाणदाणे पियबंधू तुल्ला) सम्यग्ज्ञानदान में प्रियबन्धु के समान हैं (च) और [जिनकी] (वरभतीए) श्रेष्ठ-भक्ति से (हि) निश्चित ही (चारित्त-मोक्खं) चारित्र [तथा] मोक्ष [प्राप्त होता है] (तं देवदेवं सुमदिं णमामि) उन देवों के देव सुमतिनाथ जिनेन्द्र को मैं नमन करता हूँ ।

पोम्मं समं णिम्मल-पोम्मणाहं, पोम्मालयं केवलणाण-गेहं ।
सुज्ज-समो हि तच्चप्पयासी, जण-सोक्ख णेदा देवं णमामि ॥६॥

अन्वयार्थ- [मैं] (पोम्मं समं) पद्म के समान (णिम्मल) निर्मल (पोम्मालयं) लक्ष्मी के स्थान (केवलणाण-गेहं) केवलज्ञान के घर (सुज्ज-समो हि तच्चप्पयासी) सूर्य के समान ही तत्त्वप्रकाशी [तथा] (जण-सोक्ख णेदा) जनता को सुख के मार्ग पर ले जाने वाले (पोम्मणाहं) पद्मनाथ (देवं) देव को (णमामि) नमन करता हूँ ।

एगंतधम्मो हि मिच्छत्तमूलो, रागादि-जणिदो दुक्खाण हेदू ।
सम्मत्तदिट्ठी य सुक्खाण हेदू, वक्खाणिदो तं णमामि सुपासं ॥७॥

अन्वयार्थ- (एगंतधम्मो हि मिच्छत्तमूलो) एकान्त धर्म ही मिथ्यात्व का मूल है [वह] (रागादि-जणिदो) राग आदि से उत्पन्न (य) और (दुक्खाण हेदू) दुःखों का हेतु है [इसके विपरीत] (सम्मत्तदिट्ठी) सम्यक्त्व युक्त दृष्टि (सुक्खाण हेदू) सुखों की हेतु है [ऐसा जिन्होंने] (वक्खाणिदो) व्याख्यान किया (तं) उन (सुपासं) सुपाश्वनाथ को [मैं] (णमामि) नमन करता हूँ ।

**दिवायरव्व जयदप्पयासी, णिसायरव्व सीयलत्तदायी ।
सुह-संतिकत्ता दोसाण हत्ता, चंदप्पहं चंद-चंदं णमामि ॥८॥**

अन्वयार्थ- (दिवायरव्व जयदप्पयासी) सूर्य के समान जगत्प्रकाशी (णिसायरव्व सीयलत्तदायी) चन्द्रमा के समान शीतलता देने वाले (सुह-संतिकत्ता) सुख-शांति कर्ता [तथा] (दोसाण हत्ता) दोषों के हर्ता (चंद-चंदं) चन्द्रमा के समान सौम्य (चंदप्पहं) चन्द्रप्रभु भगवान् को (णमामि) नमन करता हूँ ॥८॥

**गुत्तित्थियं पंच महव्वदाणि, पंचोवदिट्ठा समिदीए जेण ।
णवहा-पयत्थं सम्मं पणीदो, तं कुंदपुप्फव्व पुप्फं णमामि ॥९॥**

अन्वयार्थ- (जेण) जिन्होंने (गुत्तित्थियं) तीन गुणियाँ (पंच महव्वदाणि) पाँच महाव्रत (समिदीए पंच) पाँच समितियों का (उवदिट्ठा) उपदेश दिया [और] (णवहा-पयत्थं) नवप्रकार के पदार्थ (सम्मं पणीदो) अच्छी तरह प्रतिपादित किए (तं) उन (कुंदपुप्फव्व) कुंद-पुष्प के समान (पुप्फं) पुष्पदंत भगवान् को (णमामि) नमन करता हूँ ।

**स-पर हिदस्स जिणणायगेण, आयारिदा सेट्ठखमादि धम्मा ।
सम्मत्त-झाणं दसहा पणीदो, तं सीयलं तित्थयरं णमामि ॥१०॥**

अन्वयार्थ- [जिन] (जिणणायगेण) जिननायक ने (स-पर हिदस्स) स्व-पर हित के लिए (सेट्ठ खमादि धम्मा) श्रेष्ठ क्षमादि धर्म (आयारिदा) आचरित किए [तथा] (सम्मत्त-झाणं) सम्यक्त्व [और] ध्यान (दसहा पणीदो) दस प्रकार प्रतिपादित किया (तं)

उन (सीयलं तित्थयरं) शीतलनाथ तीर्थकर को (णमामि) [मैं] नमन करता हूँ ।

जेणप्पणीदो दुवि-मोक्ख मग्गो, महव्वदो-पुण्ण अणुव्वदो य ।
अणुव्वदे एगदसे य सेण्णी, सेयंकरी सेय-णाहं णमामि ॥११॥

अन्वयार्थ- (जेण) जिन्होंने (दुवि-मोक्ख मग्गो) दो प्रकार का मोक्षमार्ग (पणीदो) प्रतिपादित किया [जिसमें] (महव्वदो-पुण्ण) महाव्रत पूर्ण [मोक्ष मार्ग है] (य अणुव्वदो) और अणुव्रत अपूर्ण । (अणुव्वदे एगदसे य सेण्णी) अणुव्रत में ग्यारह श्रेणी [प्रतिमा कहने वाले] (सेयंकरी) कल्याणकारी (सेय-णाहं) श्रेयनाथ [श्रेयांसनाथ] भगवान् को [मैं] (णमामि) नमन करता हूँ ।

इंदादिए खीरसिंधु-जलेहिं, सण्हाविदो मेरुगिरिम्हि बाले ।
कालंतरे पंचकल्लाण पत्तं, चम्पापुरीए पणमामि वासुं ॥१२॥

अन्वयार्थ- (बाले) बाल्यावस्था में [जिनका] (मेरुगिरिम्हि) मेरु पर्वत पर (इंदादिए) इन्द्रादि ने (खीर सिंधु-जलेहिं) क्षीर सिंधु के जल से (सण्हाविदो) अभिषेक किया था [तथा] (कालंतरे) कालान्तर में (चम्पापुरीए) चम्पापुरी में (पंचकल्लाण पत्तं) पंच-कल्याण प्राप्त (वासुं) वासुपूज्य भगवान् को [मैं] (पणमामि) प्रणाम करता हूँ ।

णाणस्सहावी य अप्पस्सरूवी, ज्ञाणिव्वदी गुण संपुण्णधारी ।
मिच्छत्तघादी सिवसोक्खभोगी, जिण्णिंददेवं विमलं णमामि ॥१३॥

अन्वयार्थ- (णाणस्सहावी) ज्ञान स्वभावी (अप्पस्सरूवी) आत्मस्वरूपी (ज्ञाणिव्वदी) ध्यानी (वदी) व्रती (गुण संपुण्णधारी) संपूर्ण गुणों के धारी (मिच्छत्तघादी) मिथ्यात्व का घात करने वाले (य) और (सिवसोक्खभोगी) मोक्षसुख के अधिकारी (जिण्णिंददेवं) विमलं णमामि जिनेन्द्रदेव विमलनाथ को नमन करता हूँ ।

ज्ञाणग्गिणा जेण दहिऊण कम्मं, अप्पसरूवत्त पत्तूण धम्मं ।
अणंत जीवाण कल्लाण कत्तं, णंतं णमामि गुण-णंत पत्तं ॥१४॥

अन्वयार्थ- (जेण) जिन्होंने (ज्ञाणग्णिणा) ध्यानाग्नि से (कम्मं डहिऊण) कर्म जलाकर (अप्पसरूवत्त) आत्मस्वरूपत्व (धम्मं) धर्म को (संपत्त) प्राप्त किया [उन] (अणंत जीवाण) अनंतजीवों का (कल्लाण कत्तं) कल्याण करने वाले (गुण णंत पत्तं) अनन्तगुणों को प्राप्त (णंतं णमामि) अनंतनाथ जिनेन्द्र को [मैं] नमन करता हूँ ।

**अब्भितरं बज्झमणेग-भेदं, परिग्गहं सव्व चत्तूण सम्मं ।
धम्मोवदिट्ठं च सम्मगसिट्ठं, धम्मस्स तं धम्मणाहं णमामि ॥१५॥**

अन्वयार्थ- [जिन्होंने] (अब्भितरं बज्झमणेग-भेदं) आभ्यन्तर [और] बाह्य के अनेक भेदों से युक्त (सव्व परिग्गहं) सभी परिग्रह को (सम्मं चत्तूण) पूरी तरह छोड़कर (धम्मोवदिट्ठं) धर्मोपदेश दिया (च) और (सम्मगसिट्ठं) सन्मार्ग दिखाया (धम्मस्स) धर्म की प्राप्ति के लिए [मैं] (तं) उन (धम्मणाहं) धर्मनाथ जिनेन्द्र को (णमामि) नमन करता हूँ ।

**भडो य उड्ढड सिवसाहणस्स, कामादि हंता दुहणासणस्स ।
णिवाहिवं मयणं तित्थणाहं, णिच्चं णमामि सिरि संतिणाहं ॥१६॥**

अन्वयार्थ- (सिवसाहणस्स) शिव-साधन के लिए (य) और (दुहणासणस्स) दुःख नष्ट करने के लिए (कामादि हंता) कामादि दुर्भावों को नष्ट करने वाले (उड्ढड भडो) उद्भट भट (णिवाहिवं मयणं तित्थणाहं) चक्रवर्ती, कामदेव, तीर्थंकर [इन पुण्य पदों से युक्त] (सिरि संतिणाहं) श्री शान्तिनाथ को [मैं] (णिच्चं) नित्य (णमामि) नमन करता हूँ ।

**पसंसिदो तोसदि णो हरिस्सं, विराहिदो जो ण करेदि रोसं ।
संपुण्ण सीलाण गुणाण पत्तं, सिरि-कुंथुणाहं वंदामि णिच्चं ॥१७॥**

अन्ययार्थ- (जो) जो (पसंसिदो) प्रशंसा करने पर (तोसदि णो हरिस्सं) न तुष्ट होते हैं, न हर्षित [तथा] (विराहिदो) विराधना

करने पर (रोसं ण करेदि) रोष नहीं करते हैं [ऐसे] (संपुण्ण सीलाण गुणाण पत्तं) सम्पूर्ण शीलों और गुणों को प्राप्त (सिरि-कुंथुणाहं) श्री कुंथुनाथ को [मैं] (णिच्चं) नित्य (वंदामि) वन्दन करता हूँ ।

जो चक्रवट्टी जए सत्तमेसिं, सप्पुण्ण-जुत्त मयरद्धजो यं ।
अट्टारसं तित्थयरं सुदेवं, पदं ति पत्तं वंदामि अरहं ॥१८॥

अन्वयार्थ- (जो) जो (जए) जगमें (सत्तमेसिं) सातवें (चक्रवट्टी). चक्रवर्ती हैं (सप्पुण्ण-जुत्त मयरद्धजो) सत्पुण्य युक्त मकरध्वज हैं (यं) और (अट्टारसं तित्थयरं) अटारहवें तीर्थकर हैं [उन] (पदं ति-पत्तं) तीन पदों को प्राप्त (सुदेवं) सच्चे देव (अरहं) अरहनाथ जिनेन्द्र को [मैं] (वंदामि) वन्दन करता हूँ ।

खविऊण सल्लं मोहारि मल्लं, दहिऊण कम्मं संपत्तं सम्मं ।
चारित्त-दंसण-तवं च णाणं, सिरिमल्लिणाहं वंदामि मल्लं ॥१९॥

अन्वयार्थ- (सल्लं) शल्य को [व] (मोहारिमल्लं) मोह रूपी मल को (खविऊण) नष्टकर (कम्मं दहिऊण) कर्म को जलाकर (सम्मं चारित्त-दंसण-तवं च णाणं) सम्यक् चारित्र-दर्शन-तप और ज्ञान को (संपत्तं) संप्राप्त (सिरिमल्लिणाहं मल्लं) श्री मल्लिनाथ रूपी महामल्ल को [मैं] (वंदामि) वंदन करता हूँ ।

मुणि-सुव्वदं सुव्वदं णिहाणं, पंचमहव्वदं सम्मत्तं दाणं ।
देविंद विंदेण वंदं मुणिंदं, देवाहिदेवं वंदामि सिरसा ॥२०॥

अन्वयार्थ- (सुव्वदं णिहाणं) सुव्रतों के खजाने (पंचमहव्वदं सम्मत्तं दाणं) पंच महाव्रत [तथा] सम्यक्त्व देने वाले (देविंद विंदेण वंदं मुणिंदं) देवेन्द्रों के समूह से वंदनीय मुनीन्द्र (देवाहिदेवं मुणि-सुव्वदं) देवाधिदेव मुनि-सुव्रत जिनेन्द्र को [मैं] (सिरसा) सिर झुकाकर (वंदामि) वंदन करता हूँ ।

जेणं णियं बोहमयेण लोगा, उवदेसिदा केइं मोक्खमग्गे ।
सुगिहत्थमग्गे केइं पविट्ठा, णमिं णमामि भावेहि सिरसा ॥२१॥

अन्वयार्थ- (जेण) जिनके द्वारा (णियं बोहमयेण) आत्मीय ज्ञानयुक्त बोध से (उवदेसिदा) उपदेशित किए गए (लोगा) लोकजन (केइं) कितने ही (मोक्खमग्गे) मोक्ष मार्ग में [तथा] (केइं) कितने ही (सुगिहत्थमग्गे) सदगृहस्थ मार्ग में (पविट्ठा) प्रविष्ट हुए [उन] (णमिं) नमिनाथ जिनेन्द्र को (भावेहि) भाव पूर्वक (सिरसा) सिर झुकाकर (णमामि) नमन करता हूँ ।

**महाणुभावो सग्गुण-णिहाणो, हलिंद-चक्किंद-देविंद-पुज्जो ।
कुमारकाले चइदूणं सव्वं, णिग्गंथदेवं पणमामि णेमिं ॥२२॥**

अन्वयार्थ- (कुमारकाले हि) कुमार काल में ही (सव्वं) सब कुछ (चइदूणं) छोड़कर [जो] (महाणुभावो) महानुभाव (सग्गुण-णिहाणो) सदगुण-निधान (हलिंद-चक्किंद-देविंद-पुज्जो) हलीन्द्र-बलभद्र, चक्रीन्द्र-चक्रवर्ती अर्द्धचक्रवर्ती [तथा] देवेन्द्र-सौधर्मेन्द्र आदि से पूज्य [हुए उन] (णिग्गंथदेवं) निर्ग्रथदेव (णेमिं) नेमिनाथ जिनेन्द्र को (पणमामि) प्रणाम करता हूँ ।

**उवसग्गजेदा मग्गस्सणेदा, कोहादि हंता य कम्माण भेदा ।
जीवाण दुक्खाण हत्ता-विहत्ता, विग्घावहारी पणमाणि पासं॥२३॥**

अन्वयार्थ- (उवसग्गजेदा) उपसर्ग विजेता (मग्गस्सणेदा) मोक्षमार्ग के नेता (कोहादि हंता) क्रोधादि का नाश करने वाले (कम्माण भेदा) कर्मों को भेदने वाले (य) और (जीवाण दुक्खाण हत्ता-विहत्ता) जीवों के दुःखों को नष्ट-विनष्ट करने वाले (विग्घावहारी पणमाणि पासं) विघ्नहारी पार्श्वनाथ भगवान् को [मैं] (पणमामि) प्रणाम करता हूँ ।

**णिरबेक्ख बंधू भव्वाण-इंदू, भवरोग वेज्जं वच्छल्ल सिंधू ।
करुणा सु-धम्मं जेणप्पणीदं, तं वड्ढमाणं पणमामि वीरं ॥२४॥**

अन्वयार्थ- (णिरबेक्ख बंधू) निरपेक्ष बंधू (भव्वाण-इंदू) भव्य जीव रूपी कमलों के लिए चन्द्रमा (भवरोग वेज्जं) भव रोग शमनार्थ वैद्य (वच्छल्ल सिंधू) वात्सल्य के महासागर [तथा] (जेण)

जिन्होंने (करुणा सु-धम्मं पणीदं) करुणामय सुधर्म अर्थात् अहिंसाधर्म का प्रतिपादन किया (तं) उन (वीरं वड्डमाणं) वीर वर्द्धमान् को (पणमामि) प्रणाम करता हूँ ।

इणमो थुदिं जो णिच्चं, पढेदि वा सुणेदि वा ।

सग्ग-मोक्खं च पावेदि, सुलीणो ण हि संसयो ॥

अन्वयार्थ- (इणमो थुदिं) इस स्तुति को (जो) जो (णिच्चं) नित्य (पढेदि) पढ़ता है (सुणेदि) सुनता है (वा) अथवा [इसमें] (सुलीणो) अच्छी तरह लीन होता है [वह] (हि) निश्चय से (सग्ग-मोक्खं च) स्वर्ग और मोक्ष को (पावेदि) पाता है [इस वचन में] (ण संसयो) संशय नहीं है ।

तित्थयर त्थव

तित्थयरं चउवीस णमो-२

उसहादि महावीर णमो-२

उसह-अजिद-संभव जिणसामिं

अहिणंदण सुमदिं सिवगामिं ।

पोम्म-सुपासं चंद णमो ।

तित्थयरं. ॥१॥

पुप्फदंत-सीयल-सेयं जिण

वासुपुञ्ज विमलणाहं जिण ।

णंत धम्म जिण संति णमो ।

तित्थयरं. ॥२॥

कुंथु अरह मल्लिं मुणिरायं

मुणि-सुव्वय-णमि-णेमिं पायं ।

पासणाह महावीर णमो ।

तित्थयरं. ॥३॥

ति-आयरिय-त्थुदि

गणिंद आदिसायर-मुणिंदं, सम्मत्त-चारित्त-सण्णाण-चंदं ।
तच्चोवदेसी य सत्तोववासी, मुणिकुंजरं तं सूरिं णमामि ॥१॥

अन्वयार्थ- [जो] (सम्मत्त-चारित्र-सण्णाणचंदं) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र रूपी चन्द्र हैं (तच्चोवदेसी) तच्चोपदेशी (य) और (सत्तोववासी) सत्तोपवासी हैं [थे] (तं) उन (मुणिकुंजरं) मुनिकुंजर (गणिंद) गणीन्द्र (सूरिं) आचार्य (आदिसायर-मुणिंदं) आदिसागर मुनीन्द्र को [मैं] (णमामि) नमस्कार करता हूँ ।

महावीरकिंतिं विसट्ट किंतिं, धीरं गहीरं च सज्झाण-तिंतिं ।
भासा सु अट्टारस धारगं च, उवसग्गजेदं सूरिं णमामि ॥२॥

अन्वयार्थ- (विसट्टकिंतिं) विस्तृत कीर्तिवाले (धीरं) धीर (गहीरं) गम्भीर (सज्झाण तिंतिं) सच्चे ध्यान से तृप्त (अट्टारस भासा-सु धारगं) अठारह श्रेष्ठ भाषाओं को धारण करने वाले (च) और (उवसग्गजेदं) उपसर्ग विजयी (सूरिं) आचार्य (महावीरकिंतिं) महावीर कीर्ति को [मैं] (णमामि) नमस्कार करता हूँ ।

किसकाय किण्णु अप्पबलीयं, उववासी किण्णु अप्पवसीयं ।
पक्कट्टवयणं णयणेसु तेयं, सूरिं तवस्सिं सम्मदिं णमामि ॥३॥

अन्वयार्थ- [जो] (किसकाय) कृषकाय (किण्णु) किन्तु (अप्पबलीयं) आत्मबली हैं (उववासी) उपवासी (किण्णु) किन्तु (अप्पवसीयं) आत्मवशी-आत्मवासी हैं [जिनके] (पक्कट्टवयणं) प्रकष्ट वचन हैं [और] (णयणेसु) आँखों में (तेयं) तेज है [उन] (तवस्सिं) तपस्वी (सूरिं) आचार्य (सम्मदिं) सन्मतिसागरजी को [मैं] (णमामि) नमस्कार करता हूँ ।

टिप्पणी- गाथाओं के अन्वयार्थ में दो तरह के कोष्ठकों का प्रयोग किया गया है, () यह कोष्ठक गाथा में से लिए गए शब्दों का तथा [] यह कोष्ठक ऊपर से जोड़े गए शब्दों का सूचक है ।

जयदु भारदी सारदा

णाण-णिज्झरी सव्वदा, वीदरागवाणी सदा ।
कण्णजलि-पेज्जा सुधा, जयदु भारदी सारदा ॥
उसहादि जिणवराण कहिदा, गणहराण मुणी गंधिदा ।
सुदकेवलिणं-मुह विराजिदा, अंगधारिणा वंदिदा ॥
भद्धबाहु-मुणी पुप्फ-भूदबली, गुण धारादिए पूजिदा ।
सरणदायिणी णिच्चमभयदा, जयदु भारदी सारदा ॥

णाण-णिज्झरी सव्वदा. ॥१॥

तिसिद-सावगेहिं परिपीदा, सुर- मणुजाणं वंदिदा ।
समिदी गुत्ती महव्वद पूदा, रयणणिस्येण मंडिदा ॥
भव्व-जणाणं कल्लाणत्थं, गुरु-मुह-पव्वद णीसरिदा ।
जरा-मरण-जर-दुक्खहारिदा, जयदु भारदी सारदा

णाण-णिज्झरी सव्वदा. ॥२॥

सुददेवी सुदवच्छलहिदया, धम्ममयी सुहकारिणी ।
तमहरणी दिट्ठिप्पगासिणी, मोक्खज सुह-संचारिणी ॥
पुण्णक्खर-लिहिदा सुदंसणा, आद-पुट्ट-उट्टंकिदा ।
मुणिविंदाणं जणणी सुहदा, जयदु भारदी सारदा ॥

णाण-णिज्झरी सव्वदा. ॥३॥

प. पूज्य श्री १०८ श्री सुनीलसागर जी महाराज

द्वारा रचित ग्रन्थ 'णीदी संगहो' के प्रकाशन हेतु द्रव्य सहायक

श्री झमकलालजी टाया, श्री प्रणय कारवा, श्रीमती सुशीला कालूलालजी चित्तौड़ा, श्री महावीरजी जैन, मेहता, श्रीमती शान्ता नरेन्द्र जी अखावत, श्री शान्तिलालजी जैन जांगड़ा, श्रीमती सम्पतदेवी कुंथुकुमारजी जैन, श्रीमती पी. सी. जैन, आयड़, श्रीमती केसरबाई हीरालालजी गांधी, श्रीमती प्रेमलता कुणावत, श्री सुमतिलालजी रांटिया, श्रीमती सुषमा सज्जनलालजी भोरावत, श्री चन्दनलालजी छापिया, श्रीमती प्रेम पारसमलजी कुणावत, श्री अजीतकुमारजी डोटिया, श्री पन्नालालजी भोरावत, श्रीमती कनकमलजी देवेन्द्र जी छापिया, श्रीमती बेबी राजेन्द्रजी जैन, श्रीमती मधुबेन कल्याणमलजी मेहता, श्रीमती कमला शान्तिलालजी चित्तौड़ा, श्रीमती धनलक्ष्मी कान्तिलालजी कोठारी, श्रीमती प्रेमलता श्यामसुन्दरजी अखावत, श्रीमती राजकुमारी चन्द्रप्रकाशजी जैन बोहरा, श्री शान्तिलालजी जंसीगोत, श्री अम्बालालजी चांदपोल वाले, श्रीमती सुदर्शना चान्दमलजी गामड़िया, श्रीमती चन्द्राबेनजी मेहता, श्रीमती चन्द्रकांता वरदीचन्दजी जावरिया, श्री माणकलालजी मेहता, श्रीमती कमलाबाई शान्तिलालजी कुणावत, श्रीमती वनमाला, श्रीमती जयमाला लेखराज मुरावत, श्रीमती रंजना मानव मिंडा, मंजु रांटिया, गुप्तदान ।

भारदी-त्थुदि

जयदु भारदी, जयदु भारदी-२
जिणवाणी सारदा, सुयदेवी सरस्सदी-२

वीरमुह णिग्गदा, गोदमादि गंधिदा,
सुद-सूरी भासिदा, गुणधरादि विरइदा ।
कुंदकुंद-भारदि, सुद धरादि धारदि,
जिनवाणी सारदा, सुयदेवी सरस्सदी ॥
जयदु. ॥१॥

अण्णाण-तम-हारिणी, सण्णाण-सुद-कारिणी,
सदद-संतिदायिणी, बारसंग धारिणी ।
मिच्छत्त-अंध-णासदि, सम्मत्त-सम्म सासदि,
जिणवाणी सारदा, सुयदेवी सरस्सदी ॥
जयदु. ॥२॥

विसय-विस-रेयणं, जम्ममरण छेदणं,
जिणवयण-मोसहं, सत्थ हि सुहारसं ।
कम्मपुंज य जारदि, भवजलहि तारदि,
जिणवाणी सारदा, सुयदेवी सरस्सदी ॥
जयदु. ॥३॥

पारदर्शी, श्याइ, उदयपुर २ 2411029